चौखम्बा संस्कृत सीरीज
१६२
****

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

ब्रह्मपुराणम्

मूल तथा भाषानुवाद

भाषाभाष्यकार
एस. एन. खण्डेलवाल
(श्री नाथ खण्डेलवाल)

पूर्वभाग:

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : द्वितीय, वि० सं० २०७७, सन् २०२१
मूल्य : रु. २१५०.०० (सेट)

ISBN : 978-81-7080-467-3 (पूर्वभाग)

इस पुस्तक का सर्वाधिकार प्रकाशक के पास सुरक्षित है। इसके किसी भी अंश का किसी भी रूप में पुनर्मुद्रण या किसी भी विधि (जैसे—इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या कोई अन्य विधि) से प्रयोग या किसी ऐसे यन्त्र में भण्डारण जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सके, प्रकाशक की लिखित पूर्वानुमति के बिना नहीं किया जा सकता।

© चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
फोन : (आफिस) (०५४२) २३३३४५८
(आवास) (०५४२) २३३५०२०, २३३४०३२
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice01@gmail.com
web-site : www.chowkhambasanskritseries.com

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १११८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३५०२०

आदिब्राह्म महापुराण : महत्ता और स्वरूप

- डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', फैलो इण्डोलॉजी

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।

अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गता: ॥

भारतीय संस्कृति के स्वरूप के संयोजन में पुराणों ने व्यावहारिक योगदान किया है। देववाद के विकास के साथ-साथ विकसित हुई गाथाओं और आख्यानों-उपाख्यानों से पाठक-हृदय के आह्लाद का अभिवर्धन करने की दिशा में पुराणों का अवदान सर्वाधिक है और इन पुराणों का विकास भी इसी का एक समानान्तर क्रम भी है, क्योंकि महापुराण, पुराण, उप और औपपुराण ही नहीं, स्थल पुराणों की निरन्तर विद्यमानता संस्कृति के विविध चरणों-सोपानों के साथ-साथ बौद्धिक स्तर पर धर्म-मत-सम्प्रदायों के परीक्षण और प्रसार का भी एक स्वरूप है। पुराण किसी भी धार्मिक-आनुष्ठानिक विचार के लिए यदि आरम्भ है, तो उसके लिए प्रमाणभूत भी। दरअसल पुराणों का स्वरूप लोक का श्लोकान्तरण है और उनमें वैदिक, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और स्मृतियों के अनेकानेक स्तम्भ आधार प्रदान करते द्रष्टव्य हैं। इसलिए पुराणों को प्रारम्भिक प्रमाण भी स्वीकारा गया है और इस रूप में उनका पञ्चलक्षणात्मक होना बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। ये राजकीय उपयोग के तो थे ही, जैसा कि चाणक्य संकेत देता है कि शासनकर्ता को नियमित रूप से इतिहास का श्रवण करना चाहिए और यह इतिहास पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, वीरोपाख्यानमूलक उदाहरण, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र से संयुक्त होगा— पूर्वमहर्भागं हस्त्यश्वरथप्रहरण विद्यासु विनयं गच्छेत्, पश्चिममितिहासश्रवणे। पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतीतिहास:। *(अर्थशास्त्र 1, 5)* साथ ही इनका लोकोपयोग भी कम नहीं था। मनु, औशनस आदि ने इस व्यवस्था का प्रतिपादन किया है और नियमित पाठ की आवश्यकता बताई है। इसलिए अनेक पुराणों का प्रणयन हुआ और निरन्तर उनका विकास भी हुआ।

महापुराणों में ब्रह्मपुराण का विशिष्ट महत्व रहा है और प्राचीन पुराणों में परिगणित विष्णुपुराण, मत्स्य एवं वायुपुराण प्रभृति में पुराणों की जो सूचियाँ मिलती हैं, उनमें इस पुराण को कहीं प्रथम तो कहीं अन्य स्थान पर दिया गया है। विष्णु के विवरण से यह तो स्पष्ट है कि यह प्रथम या आद्यपुराण रहा है— चतुष्टयेनाप्येतेन संहितानामिदं मुने। आद्यं सर्वपुराणानां पुराणं ब्राह्ममुच्यते॥ अष्टादश पुराणानि पुराणज्ञा: प्रचक्षते॥ किन्तु वायुपुराण (104, 3) और देवीभागवतपुराण (1, 3, 3) ने पुराणों का क्रम मत्स्यपुराण से निर्धारित किया है और इसको पाँचवें क्रम पर रखा है। यह स्वीकार्य है कि ब्रह्मपुराण अपने स्वरूप में अमरकोश द्वारा निर्धारित पञ्चलक्षणात्मक कोटि का प्रतिनिधित्व करता है, किन्तु वह स्वयमेव पुराण और आख्यान दोनों ही संज्ञाएँ देता है और लोमहर्षण वचन से स्वयं को वैष्णव कोटि का पुराण कहता है— पुराणं वैष्णवं त्वेतत्सर्व किल्विषनाशनम्। विशिष्टं सर्वशास्त्रेभ्य: पुरुषार्थोपपादकम्॥ *(ब्रह्मपुराण 246, 20)* इस प्रकार यह पुराण का अपना मत है जिसे वह स्वयं के अर्थ में देता है, यह बिल्कुल वैसे ही है जैसे वायुप्रोक्त पुराण अपने को इतिहास के साथ ही पुराण भी सिद्ध करता है— इमं यो ब्राह्मणो विद्वानितिहासं पुरातनम्। शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि तथाध्यापयतेऽपि च। *(वायु. 103, 48; अन्य तुलनीय 103, 56 तथा 58)*

ब्रह्मपुराण का पाठ और पुराणों का मत

ब्रह्म या ब्राह्म नाम से आभास होता है कि यह ब्रह्मा से सम्बन्धित पुराण होगा, किन्तु पुराणकार पहले श्लोक से ही यह सिद्ध करता है कि वह उस पुरुषोत्तम संज्ञक ब्रह्म हरि के प्रति प्रणतिभाव लिए है, जिससे विस्तारपूर्वक रचा हुआ यह मायामय सम्पूर्ण चराचर उत्पन्न होता है और जिसमें स्थित रहता है तथा जिसमें अन्ततः विलीन होता है, जिसका ध्यान करने से मुनिवरों का समुदाय सर्वथा प्रपञ्चशून्य मोक्ष को प्राप्त करते हैं, वह ब्रह्म मल रहित, सनातन, व्यापक और अचल है— यस्मात् सर्व्वमिदं प्रपञ्चरचितं मायाजगज्जायते, यस्मिंस्तिष्ठति याति चान्तसमये कल्पानुकल्पे पुनः ॥ यं ध्यात्वा मुनयः प्रपञ्चरहितं विन्दन्ति मोक्षं ध्रुवम्, तं वन्दे पुरुषोत्तमाख्यममलं नित्यं विभुं निश्चलम्॥ *(पूर्व. 1, 1)*

ब्रह्मपुराण के वर्तमान पाठ में 13 हजार 783 श्लोक मिलते हैं। बृहन्नारदीयपुराण (92, 31) के अनुसार इसमें 10 हजार श्लोक हैं। यही मान्यता भागवतपुराण (द्वादश स्कन्ध 13, 4) की भी है; जबकि अग्निपुराण (272, 1) इसमें 25 हजार श्लोक होने की मान्यता का प्रतिपादन करता है। मत्स्यपुराण, लिंग, वराह, कूर्म और पद्मपुराण का मत उचित लगता है, क्योंकि वे 13 हजार श्लोकों की गणना प्रतिपादित करते हैं जो वर्तमान पाठ में लगभग मिल जाती है। यह पाठ पुणे के आनन्दाश्रम प्रकाशन द्वारा प्रथमतः तैयार किया गया है। गणनाओं के आधार पर यह संख्या क्षेपकों के कारण विस्तृत होती रही या पुराणपाठ निरन्तर विकसिनशील रहा होगा, ऐसा माना जा सकता है, क्योंकि भविष्यपुराण के ब्राह्मपर्व में यह विचार दिया गया है कि प्रारम्भ में लगभग सभी पुराणों का प्रमाण बारह-बारह हजार श्लोक का था। धीरे-धीरे ये विस्तृत भी हुए तो संक्षिप्त भी। कुछ पुराणों ने उप और औप पुराणों को विलोपन करते हुए अपनी पीठिका को सुदृढ़ किया, तो कुछ नवीन पुराण भी इसी रूप में सामने आए और महत्वपूर्ण हो गए। शिवपुराण इसका उदाहरण है जिसमें शिवधर्मोत्तरपुराण, नन्दिकेश्वरपुराण आदि का समावेश किया गया है। यही बात स्कन्दपुराण पर भी लागू होती है, जिसके नाम से हेमाद्रि द्वारा उद्धृत कई श्लोक वर्तमान पाठ में नहीं मिलते। यों तो इसको आदिपुराण कहा गया है, किन्तु आद्यपुराण और आद्युपपुराण नाम से पृथक् से ग्रन्थ भी मिलते हैं।

ब्रह्मपुराण : दो पाठ और और कालक्रम

ब्रह्मपुराण के दो पाठ मिलते हैं, जैसा कि बंगाल नरेश बल्लालसेन ने दानसागर में स्वीकार किया है। दानसागर में जिन तेरह पुराणों के वचनों को महत्त्व दिया है, उनमें ब्रह्मपुराण प्रथम स्थान पर है, तदोपरान्त वराह, आग्नेय, भविष्य, मत्स्य, वामन, वायवीय, मार्कण्डेय, वैष्णव, शैव, स्कान्द, पद्म और कूर्मपुराण को गिनाया है। *(दानसागर : सम्पादक भवतोष भट्टाचार्य, बी. आई. सीरीज़, 1953-56) वह यह भी स्वीकारते हैं कि उस काल में* ब्राह्मपुराण के नाम से दो पाठ उपलब्ध थे और उनमें से एक पाठ को उन्होंने दान विषयक वचन न होने से स्वीकार नहीं किया था। ब्राह्मपुराण नाम से एक उपपुराण भी उपलब्ध था। कई श्लोक जो निबन्ध ग्रन्थों में प्रमाण रूप में उद्धृत किए गए हैं, वर्तमान पाठ में नहीं मिलते। ये श्लोक जीमूतवाहन, अपरार्क, बल्लालसेन, देवण्णभट्ट और हरदत्त आदि ने उद्धृत किए हैं और ब्रह्मपुराण के वर्तमान संस्करणों में कहीं उपलब्ध नहीं होते हैं। इसी कारण प्रो. राजेन्द्रचन्द्र हाजरा का मत है कि पुराण का वर्तमान पाठ 10वीं और 12वीं शताब्दी के बीच का सम्पादन हो सकता है। हालांकि इसमें विष्णुपुराण के भी कतिपय श्लोक मिलते हैं और नारदीयपुराण में

इसके श्लोक उद्धृत किए गए हैं। यह पुराणों की अन्योन्याश्रिता है और ऐसा अन्य पुराणों में भी देखा जा सकता है।

वर्तमान ब्रह्मपुराण में गरुडपुराण की तरह दो भाग हैं— पूर्ववर्तीभाग और उत्तरवर्तीभाग। इन दोनों भागों में 246 अध्याय प्राप्त होते हैं। पूर्ववर्ती भाग में उपलब्ध होने वाले विषयों में मुख्य हैं— देवताओं और असुरों सहित प्रजापतियों एवं दक्ष इत्यादि की उत्पत्ति, जो अन्यान्य पुराणों में भी प्रतिपाद्य है। इसके बाद, वाल्मीकि रामायण की तरह सूर्यवंश का वर्णन करते हुए श्रीराम के चतुर्व्यूहावतारों का विवरण है, जो इस नाम से महाभारतादि में उल्लिखित पाञ्चरात्र सम्प्रदाय को अभीष्ट था। चन्द्रवंश के क्रम में श्रीकृष्ण के चरित्र का वर्णन आगे आया है और फिर भूगोल वर्णन के क्रम में पृथ्वी के द्वीपों, वर्षों, पर्वतोत्पन्न नदियों, स्वर्ग-पातालादि लोकों के साथ ही नरक वर्णन इस पुराण की भी शिव, गरुड आदि पुराणों की तरह ही विशेषता है। मूलतः चौथी शताब्दी से भारत में यमपट्ट वाचन की जो परम्परा थी, वह व्यक्ति के कर्मानुसार लोकालोक की प्राप्ति को परिभाषित करती थी और बाद में यह वर्णन न केवल पुराणों का प्रतिपाद्य बना, बल्कि सुदूरवर्ती द्वीपों में प्रतिमा फलकों में भी चित्रित हुआ है। सूर्य की स्तुति है जो भविष्य और साम्बपुराण की भी विशेषता रही है। पार्वती के जन्म तथा विवाह का वर्णन लोक रुचि के प्रसंग के क्रमानुसार मिलती है, जिस पर मध्यकाल में पार्वती मंगल नाम से ब्याहुला और मंगलकाव्यों का प्रणयन हुआ है। इसी क्रम में दक्ष का आख्यान तथा एकाम्र क्षेत्र का माहात्म्य भी इस भाग में मिलता है। एकाम्र क्षेत्र के आधार पर ही इसके प्रणयन क्षेत्र पर भी विचार किया जा सकता है। इस माहात्म्य पर कालान्तर में एकाम्रपुराण जैसे उपपुराण का भी प्रणयन हुआ है। वैसे यह विचार भी किया जा सकता है कि जिस गोदावरी के प्रवाह क्षेत्रस्थ दण्डकारण्य का पुराणकार ने आँखों देखा जैसा वर्णन किया है, वह इसके प्रणयन का स्थान रहा हो।

ब्रह्मपुराण का उत्तरभाग पुरुषोत्तम क्षेत्र की महत्ता के प्रतिपादन के साथ आरम्भ होता है और उसका पर्याप्त विस्तार देखने को मिलता है। यह पुरुषोत्तम क्षेत्र की उस काल में बढ़ते महत्त्व का परिचायक है, क्योंकि इसमें तीर्थयात्रा का स्वरूप और महत्ता को भी दिया गया है। इसी क्रम में लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का चरित्र पुनः वर्णित है। आगे ब्रह्मलोक, पितृश्राद्ध, वर्णाश्रमों के धर्म और आचार का विवरण है। हरिवंश, विष्णुपुराण, भागवत आदि की तरह मन्वतन्तर-युगों का आख्यानात्मक वर्णन, प्रलय का विवरण दिया गया है और अन्ततः योग और सांख्यदर्शन की महत्ता बताते हुए ब्रह्मवाद का निरूपण और इस पुराण को सुनने-पढ़ने का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। यह पुराण भी वायु, मत्स्य और ब्रह्माण्डपुराण की तरह अनुवंश श्लोक अथवा गाथाओं को उद्धृत करता है, जो पुराणों की एक विशेषता प्रतीत होती है और जिसकी ओर पार्जिटर सहित प्रो. काणे ने संकेत किया है।

यह पुराण अपनी अनेक विशिष्टताओं को लिए है और अपने कलेवर में अनेकानेक पूर्ववर्ती ग्रन्थों का ऋणि है। सांख्य और योग के सम्बन्ध में जो वर्णन इसमें है, वह महाभारत से अनुप्राणित है, जैसा कि एच. ओट्टो श्रोडर का विचार है। वायु और ब्रह्माण्डपुराण के श्लोक भी इसके लिए उपजीव्य रहे हैं, जो मत्स्यादि अन्य पुराणों के लिए आधार रहे। वैष्णव पुराणों में यह विशेषता देखने में भी आती है। फिर, गीता भी सांख्यादि के विवरण से अलग नहीं है। गीता जो महाभारत का अंग है, ब्रह्मसूत्र का उल्लेख तक करती है। सांख्य और योग

का प्रभाव विष्णु, पद्म, भागवतादि पुराणों पर भी देखा जा सकता है। यह लगता है कि पाञ्चरात्र की बुनियाद पर वैष्णव मत को यह दार्शनिक विचारधारा अभीष्ट भी थी और वह इनकी छाया में अपना पल्लवन देखता था। यों तो ब्रह्मपुराण 175वें अध्याय तक आते-आते अपना स्वरूप पूर्ण कर लेता है। जहाँ तक लगभग 4 हजार 640 श्लोक पूरे होते हैं और ब्रह्मा को वर्णनकर्ता कहा गया है, किन्तु व्यास वचनों का ही यह प्रभाव है कि पुनः वासुदेव का माहात्म्य आरम्भ होता है और पुराण का उत्तरार्ध संगृहीत या रचित होता है। यह पुराण अनेकानेक सुभाषितों और जीवनोपयोगी विषयों से परिपूर्ण रहा है।

चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आफिस, वाराणसी ने अपने पुराण प्रकाशन के महत्त्वपूर्ण ध्येय के क्रम में ब्रह्ममहापुराण के प्रकाशन का जो दायित्व उठाया है, उसके लिए कोटि-कोटि धन्यवादार्ह है। भारतीय मनीषा जो पुराणों के प्रति अतिशय श्रद्धा का भाव रखती है, इस उपक्रम से निश्चित ही सन्तुष्ट होगी, यह आशा की जानी चाहिए। चौखम्बा परिवार का इस हेतु भी आभार कि मुझे इस पुराणयज्ञ में अग्रकथन कहने का अवसर दिया। पुनश्च आभार, पुराण के इन वचनों के साथ— धर्मे मतिर्भवतु वः पुरुषोत्तमानां स ह्येक एव परलोकगतस्य बन्धुः। अर्थाः स्त्रियश्च निपुणैरपि सेव्यमाना नैव प्रभावमुपयान्ति न च स्थिरत्वम्॥

उदयपुर (राजस्थान),
होलीकोत्सव, 2016 ई.

❖❖❖

बातचीत में कहा—"हे राजन्! जो हमें विप्रों के कार्य हेतु दान करे, आप उसे भव सागर से पार करें। हम ब्रह्मरूपा तथा प्राणरूपा हैं। हमें जो ब्राह्मणों को प्रदान करेगा, हे राजन्! आप उसे संसार से पार करिये तथा जो जितव्रत व्यक्ति नित्य ब्राह्मणों हेतु हमारा दान करे, उसकी यह दानक्रिया ही हमारी अर्चना मानी जाये। जो हमारे द्वारा अधीष्ठित यह स्थावर-जंगम जगत् ब्राह्मण को दान करे, उसे भवसागर पार करें। जो उपभोग्य होने योग्य हव्य-कव्य तथा सर्वोत्तम पदार्थ दान करे, उसका हम उद्धार करें। हे राजन्! इस वैदिकी गाथा को पढ़ने, सुनने तथा स्मरण करने वाले का हम उद्धार करती हैं।।८-१४।।

ब्रह्मोवाच

यत्रैषा पठिता गाथा सोमेन सह राज्ञया। गङ्गातीरे चोषधीभिर्धान्यतीर्थं तदुच्यते॥१५॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थमौषध्यं सौम्यमेव च। अमृतं वेदगाथं च मातृतीर्थं तथैव च॥१६॥
एषु स्नानं जपो होमो दानं च पितृतर्पणम्।
अन्नदानं तु यः कुर्यात्तदानन्त्याय कल्पते॥१७॥
षट्शताधिकसाहस्त्रं तीर्थानां तीरयोर्द्वयोः। सर्वपापनिहन्तृणां सर्वसंपद्विवर्धनम्॥१८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये धान्यतीर्थादिषट्शताधिकसहस्रतीर्थवर्णनं नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२०।।

गौतमीमाहात्म्ये एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५१।।

ब्रह्मा कहते हैं—जहां गौमतीगंगा तट पर सोम के साथ औषधियों ने इस गाथा का गान किया था, उस स्थान का नाम धान्यतीर्थ है। तभी से यही औषध्य, सोम, अमृत, वेदगाथ एवं अमृत आदि कतिपय अन्य तीर्थ भी स्थित हैं। उन सबमें स्नान, जप, होम, दान, पितृतर्पण तथा अन्नदान करने से वह सब अक्षय हो जाता है। यहीं गौतमी के उत्तरी तट पर एक हजार छः सौ तीर्थ हैं। ये सभी सर्वपापहर तथा सर्व सम्पदावर्द्धक भी हैं।।१५-१८।।

।।विंशत्यधिकशततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

विदर्भा संगम तथा रेवती संगम वर्णन तथा अन्य तीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

विदर्भासंगमं पुण्यं रेवतीसंगमं तथा। तत्र यद्वृत्तमाख्यास्ये यत्पुराणविदो विदुः॥१॥
भरद्वाज इति ख्यात ऋषिरासीत्तपोऽधिकः। तस्य स्वसा रेवतीति कुरूपा विकृतस्वरा॥२॥

तां दृष्ट्वा विकृतां भ्राता भरद्वाजः प्रतापवान्।
चिन्तया परया युक्तो गङ्गया दक्षिणे तटे॥३॥
कस्मै दद्यामिमां कन्यां स्वसारं भीषणाकृतिम्।
न कश्चित्प्रतिगृह्णाति दातव्या च स्वसा तथा॥४॥
अहो भूयान्न कस्यापि कन्या दुःखैककारणम्।
मरणं जीवतोऽप्यस्य प्राणिनस्तु पदे पदे॥५॥
एवं विमृशतस्तस्य स्वाश्रमे चातिशोभने। द्रष्टुं मुनिवरः प्रायाद्भरद्वाजं यतव्रतम्॥६॥
द्व्यष्टवर्षः शुभवपुः शान्तो दान्तो गुणाकरः।
नाम्ना कठ इति ख्यातो भरद्वाजं ननाम सः॥७॥
विधिवत्पूज्य तं विप्रं भरद्वाजः कठं तदा। तस्याऽऽगमनकार्यं च पप्रच्छ पुरतः स्थितः॥८॥

ब्रह्मा कहते हैं—पुराणज्ञ लोग पवित्र विदर्भा संगम तथा रेवती संगम नामक दो तीर्थों का वर्णन करते हैं। उनका विवरण कहता हूं। पूर्वकाल में भरद्वाज नामक एक तपस्वी ऋषि थे। उनकी बहन थीं रेवती। वे कुरूपा तथा विकृत स्वर वाली थीं। भरद्वाज उनको विकृता देख कर गौमतीगंगा के पश्चिम तट पर बैठे अत्यन्त चिन्तित हो गये। उन्होंने विचार किया कि अपनी इस भीषण आकृति वाली बहन को मैं किसे समर्पित करूं? यदि इसे दान भी करना चाहूं, तब भी कोई इसे ग्रहण नहीं करेगा। दुःख का यही कारण है कि यह कन्या किसी की नहीं होगी। प्राणीगण को ऐसी कन्या के लिये जीवितावस्था में भी पग-पग पर मृत्यु दिखलाई देती है। यह बहन किसी को देना आवश्यक है। दुःख का यह कारण है कि कन्या किसी को उत्पन्न ही न हो। वे इस प्रकार चिन्तातुर थे तभी सामने से सोलह वर्ष के, शुभाकृति, शान्त, दान्त, गुणी कठ नामक मुनि ने वहां भरद्वाज को देख कर प्रणाम किया। भरद्वाज ने उनकी सविधि पूजा करके सामने बैठाया तथा उनके आने के कारण को पूछा॥१-८॥

कठोऽप्याह भरद्वाजं विद्यार्थ्यहमुपागतः। तथा च दर्शनाकाङ्क्षी यद्युक्तं तद्विधीयताम्॥९॥
भरद्वाजः कठं प्राह अधीष्व यदभीप्सितम्। पुराणं स्मृतयो वेदा धर्मस्थानान्यनेकशः॥१०॥
सर्वं वेद्मि महाप्राज्ञ रुचिरं वद मा चिरम्। कुलीनो धर्मनिरतो गुरुशुश्रूषणे रतः।
अभिमानी श्रुतधरः शिष्यः पुण्यैरवाप्यते॥११॥

कठ ने कहा—मैं विद्यार्थी हूं। आपके दर्शनार्थ यहां आया हूं। जो उचित हो वह करें। तब भरद्वाज ने उससे कहा—पुराण, स्मृति, वेद तथा जो कुछ अन्य धर्मग्रन्थ हैं, उनमें से जो पढ़ना चाहो, वह पढ़ो। हे महाप्राज्ञ! वह सब मैं जानता हूं। जो तुमको पढ़ने के लिये मन हो, वह अध्ययन करो। शीघ्र कहो। वास्तव में कुलीन, धार्मिक, गुरु सेवातत्पर, अभिमानी, श्रुतिधर शिष्य अत्यन्त पुण्यबल से ही प्राप्त होता है॥९-११॥

कठ उवाच

अध्यापयस्व भो ब्रह्मञ्शिष्यं मां वीतकल्मषम्। शुश्रूषणरतं भक्तं कुलीनं सत्यवादिनम्॥१२॥

कठ कहते हैं—हे ब्रह्मन्! मैं निष्पाप, सेवापरायण, भक्त, कुलीन तथा सत्यवादी शिष्य हूं। मुझे अध्यापन करायें।।१२।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा भरद्वाजः प्रादाद्विद्यामशेषतः। प्राप्तविद्यः कठः प्रीतो भरद्वाजमथाब्रवीत्॥१३॥

ब्रह्मा कहते हैं—"यही हो।" उन्होंने तब कठ को क्रमशः सभी विद्याओं का अध्ययन कराया। विद्यालाभ के उपरान्त हर्षित कठ ने भरद्वाज से कहा—।।१३।।

कठ उवाच

इच्छेयं दक्षिणां दातुं गुरो तव मनःप्रियाम्।
वदस्व दुर्लभं वाऽपि गुरो तुभ्यं नमोऽस्तु ते॥१४॥
विद्यां प्राप्यापि ये मोहात्स्वगुरोः पारितोषिकम्।
न प्रयच्छन्ति निरयं ते यान्त्याचन्द्रतारकम्॥१५॥

कठ कहता है—हे गुरु! मैं आपको अपनी इच्छित दक्षिणा देना चाहता हूं। जो दुर्लभ है। हे गुरुदेव! वह व्यक्त करिये। आपको हमारा नमस्कार! वास्तव में जो गुरु से विद्यालाभ करके मोह के कारण उनको पारितोषिक प्रदान नहीं करते, वे चन्द्रमा तथा नक्षत्रों की स्थितिकाल तक नरक में निवास करते हैं।।१४-१५।।

भरद्वाज उवाच

गृहाण कन्यां विधिवद्भार्यां कुरु मम स्वसाम्।
अस्थां प्रीत्या वर्तितव्यं याचेयं दक्षिणामिमाम्॥१६॥

भरद्वाज कहते हैं—तुम विधिवत् मेरी बहन को पत्नीरूप से ग्रहण करो। उसका तुम सविधि व्यवहार करो। यही मेरी दक्षिणा होगी।।१६।।

कठ उवाच

भ्रातृवत्पुत्रवच्चापि शिष्यः स्यात्तु गुरोः सदा।
गुरुश्च पितृवच्च स्यात्संबन्धोऽत्र कथं भवेत्॥१७॥

कठ कहते हैं—शिष्य सर्वदा गुरु हेतु भाई तथा पुत्र के समान है। गुरु तो पितृवत् हैं। अतः इस क्षेत्र में मेरा वैवाहिक सम्बन्ध कैसे होगा।।१७।।

भरद्वाज उवाच

मद्वाक्यं कुरु सत्यं त्वं ममाऽज्ञा तव दक्षिणा।
सर्वं स्मृत्वा कठाद्य त्वं रेवतीं भर तन्मनाः॥१८॥

भरद्वाज कहते हैं—मेरे वाक्य का तुम पालन करो। मेरे आदेश की रक्षा ही तुम्हारा दक्षिणा देना होगा। हे कठ! यह सब स्मरण करके तुम अभी रेवती को ग्रहण करो।।१८।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा गुरोर्वाक्यात्कठो जग्राह पाणिना।
रेवतीं विधिवद्दत्तां तां समीक्ष्य कठस्त्वथ॥१९॥
तत्रैव पूजयामास देवेशं शंकरं तदा। रेवत्या रूपसंपत्त्यै शिवप्रीत्यै च रेवती॥२०॥
सुरूपा चारुसर्वाङ्गी न रूपेणापमीयते। अभिषेकोदके तत्र रेवत्या यद्विनिसृतम्॥२१॥
साऽभवत्तत्र गङ्गायां तस्मात्तन्नामतो नदी। रेवतीति समाख्याता रूपसौभाग्यदायिनी॥२२॥

ब्रह्मा कहते हैं—कठ ने गुरुवाक्य को स्वीकार करके रेवती से पाणिग्रहण कर लिया। तब कठ यथाविधि प्रदान की गई रेवती को देखते ही शंकर की आराधना करने लगे। उनका शिवाराधन का उद्देश्य था शंकर की प्रीति प्राप्त करना तथा रेवती को रूपवती बनाना। कठ की आराधना द्वारा रेवती सुरूपा, सुन्दर अंगों वाली तथा अनुपम सुन्दरता युक्त हो गई। वहां रेवती का अभिषेक करने से जो जल गिरा, वह गंगा में मिलकर एक प्रसिद्ध नदी हो गया। वह रूप सौभाग्यप्रदा रेवती नदी कही गई॥१९-२२॥

पुनर्दर्भैश्च विविधैरभिषेकं चकार सः। पुण्यरूपत्वसंसिद्ध्यै विदर्भा तदभून्नदी॥२३॥
श्रद्धया संगमे स्नात्वा रेवतीगङ्गयोर्नरः। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते॥२४॥

पुनः कुशजल से रेवती ने पुण्यरूपत्व सिद्धि हेतु अपनी अभिषेक क्रिया सम्पन्न किया। इस अभिषेक जल से विदर्भा नामक नदी की उत्पत्ति हो गई। जो मनुष्य रेवती तथा गंगा के संगम में श्रद्धा पूर्वक स्नान करते हैं, वे सर्वपाप मुक्त होते हैं तथा अन्त में उनको विष्णुलोक प्राप्त हो जाता है। वह वहां सम्मानित होता है॥२३-२४॥

तथा विदर्भागौतम्योः संगमे श्रद्धया मुने।
स्नानं करोत्यसौ याति भक्तिं मुक्तिं च तत्क्षणात्॥२५॥
उभयोस्तीरयोस्तत्र तीर्थानां शतमुत्तमम्। सर्वपापक्षयकरं सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥२६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये विदर्भासङ्गमरेवतीसङ्गमादितीर्थवर्णनं नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५२॥

हे मुनि! विदर्भी-गौतमी संगम में जो सश्रद्ध भाव से स्नान करता है, उसे भुक्ति तथा मुक्ति, दोनों की प्राप्ति होती है। वहां संगम के दोनों तट पर सर्वपापनाशक एवं सर्वसिद्धिप्रद सौ उत्तम तीर्थ हैं॥२५-२६॥

॥एकविंशत्यधिकशततम अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

अथ द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

पूर्णादि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मोवाच

पूर्णतीर्थमिति ख्यातं गङ्गाया उत्तरे तटे।
तत्र स्नात्वा नरोऽज्ञानात्तथाऽपि शुभमाप्नुयात्॥१॥
पूर्णतीर्थस्य माहात्म्यं वर्ण्यते केन जन्तुना।
स्वयं संस्थीयते यत्र चक्रिणा च पिनाकिना॥२॥
पुरा धन्वन्तरिर्नाम कल्पादावायुषः सुतः। इष्ट्वा बहुविधैर्यज्ञैरश्वमेधपुरःसरैः॥३॥
दत्त्वा दानान्यनेकानि भुक्त्वा भोगांश्च पुष्कलान्।
विज्ञाय भोगवैषम्यं परं वैराग्यमाश्रितः॥४॥
गिरिशृङ्गेऽम्बुधेः पारे तथा गङ्गानदीतटे। शिवविष्ण्वोर्गृहे वापि विशेषात्पुण्यसंगमे॥५॥
तप्तं हुतं च जप्तं च सर्वमक्षयतां व्रजेत्। धन्वन्तरिरिति ज्ञात्वा तत्र तेपे तपो महत्॥६॥
ज्ञानवैराग्यसम्पन्नो भीमेशचरणाश्रयः। तपश्चकार विपुलं गङ्गासागरसंगमे॥७॥

ब्रह्मा कहते हैं—गंगा के उत्तर तट पर पूर्णतीर्थ नामक प्रसिद्ध तीर्थ है। मानव वहां यदि अनजाने में भी स्नान कर लेता है, तब वह पापों से मुक्त हो जाता है। वहां स्वयं भगवान् चक्रपाणि एवं पिनाकपाणि सदा अवस्थान करते हैं। उस पूर्णतीर्थ की महिमा कौन शरीरधारी कह सकेगा? आदिकल्प के प्रारम्भ काल में आयु के पुत्र महाराज धन्वन्तरी अश्वमेधादि विशेष यज्ञों तथा नाना दानों के साथ प्रचुर भोगों को भोगने के उपरान्त संसार की परिणाम विरसता को समझ कर परम वैराग्यवान् हो गये। गिरिशिखर, गंगा आदि नदीतट, समुद्रतट, शिवमन्दिर, विष्णुमन्दिर इत्यादि पुण्यस्थलों पर जप-तप करने तथा होमादि करने का अक्षय फल होता है, यह उन्होंने सुना। तब वे गंगासागर संगमस्थ भीमेश्वर के चरणों का आश्रय लेकर ज्ञान-वैराग्य युक्त चित्त से महान् तप करने लगे।।१-७।।

पुरा च निकृतो राज्ञा रणं हित्वा महासुरः। सहस्रमेकं वर्षाणां समुद्रं प्राविशद्भयात्॥८॥
धन्वन्तरौ वनं प्राप्ते राज्यं प्राप्ते तु तत्सुते। विरागं च गते राज्ञि ततः प्रायादथार्णवात्॥९॥
तपस्यन्तं तमो नाम बलवानसुरो मुने। गङ्गातीरं समाश्रित्य राजा धनवन्तरिर्यतः॥१०॥
जपहोमरतो नित्यं ब्रह्मज्ञानपरायणः। तं रिपुं नाशयामीति तमः प्रायादथार्णवात्॥११॥
नाशितो बहुशोऽनेन राज्ञा बलवता त्वहम्।
तं रिपुं नाशयामीति तमः प्रायादथार्णवात्॥१२॥
मायया प्रमदारूपं कृत्वा राजानमभ्यगात्। नृत्यगीतवती सुभ्रुर्हसन्ती चारुदर्शना॥१३॥

पूर्वकाल में तम नामक एक असुर इन राजा के भय से सागर में छिप गया था। वह एक हजार वर्ष तक वहां छिपा था। जब उसने धन्वन्तरी की वैराग्य प्राप्ति तथा वनगमन और उसके पुत्र द्वारा राज्य प्राप्त करने का समाचार सुना, तब वह समुद्र से बाहर निकला। वह बली दैत्य पूर्व वैर का स्मरण करके धन्वन्तरी की हत्या करने हेतु गंगातीरस्थ धन्वन्तरी के आश्रम पर पहुंचा। उसने विचार किया, इस शत्रु ने अनेक बार मुझे पराजित किया था। अब यह ब्रह्मज्ञान परायण तथा जप परायण है। अतः कैसे इसका संहार करूं? यह सोचते-सोचते उसने एक चारुदर्शना स्त्री का रूप माया से धारण किया और कटाक्ष करते, हंसते हुये तथा नाचते-गाते वह राजा के सामने आया।।८-१३।।

तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं बहुकालं नयान्विताम्।
शान्तामनुव्रतां भक्तां कृपया चाब्रवीन्नृपः॥१४॥

उस सौम्य आकृति वाली, विनयी, सुन्दर भौंओं से सम्पन्न, हास्यरत, भक्त एवं व्रती लगने वाली नारी को राजा ने बहुधा देखा। अंततः राजा ने भक्ति पूर्वक उस स्त्री से प्रश्न किया।।१४।।

नृप उवाच

काऽसि त्वं कस्य हेतोर्वा वर्तसे गहने वने।
कं दृष्ट्वा हर्षसीव त्वं वद कल्याणि पृच्छते॥१५॥

राजा कहते हैं—हे सुन्दरी! तुम इस गहन वन में विचरने वाली कौन हो? हे कल्याणी! किसे देखते प्रसन्नता प्रकट कर रही हो? मेरे प्रश्न का उत्तर दो।।१५।।

ब्रह्मोवाच

प्रमदा चापि तद्वाक्यं श्रुत्वा राजानमब्रवीत्॥१६॥

ब्रह्मा कहते हैं—उस नारी ने राजा का कथन सुनकर उत्तर दिया—।।१६।।

प्रमदोवाच

त्वयि तिष्ठति को लोके हेतुर्हर्षस्य मे भवेत्।
अहमिन्द्रस्य या लक्ष्मीस्त्वां दृष्ट्वा कामसंभृतम्॥१७॥
हर्षाच्चरामि पुरतो राजंस्तव पुनः पुनः। अगण्यपुण्यविरहादहं सर्वस्य दुर्लभा॥१८॥

नारी कहती है—हे राजन्! तुम्हारे विद्यमान रहते जगत् में और कौन मेरे हर्ष का कारण हो सकता है? जो इन्द्र की लक्ष्मी है, वही मैं हूं। आपको मैं काम में संभूत देखकर प्रसन्नता के कारण मैं बारम्बार आपके समक्ष विचरण कर रही हूं। मैं तो अगणित पुण्य रहित व्यक्ति के लिये सदा दुर्लभ रहती हूं।।१७-१८।।

ब्रह्मोवाच

एतद्वचो निशम्याऽऽशु तपस्त्यक्त्वा सुदुष्करम्। तामेव मनसा ध्यायंस्तन्निष्ठस्तत्परायणः॥१९॥
तदेकशरणो राजा बभूव स यदा तमः। अन्तर्धानं गतो ब्रह्मन्नाशयित्वा तपो बृहत्॥२०॥

एतस्मिन्नन्तरेऽहं वै वरान्दातुं समभ्यगाम्। तं दृष्ट्वा विह्वलीभूतं तपोभ्रष्टं यथामृतम्॥२१॥
तामश्वास्याथ विविधैर्हेतुभिर्नृपसत्तमम्। तव शत्रुस्तमो नाम कृत्वा तां तपसश्च्युतिम्॥२२॥
चरितार्थो गतो राजन्न त्वं शोचितुमर्हसि। आनन्दयन्ति प्रमदास्तापयन्ति च मानवम्॥२३॥
सर्वा एव विशेषेण किमु मायामयी तु सा। ततः कृताञ्जली राजा मामाह विगतभ्रमः॥२४॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजा ने यह सुनकर अविलम्ब अपना दुष्कर तप छोड़ दिया। वह उस माया नारी के प्रति निष्ठावान तथा अनुरक्त होकर सदा मन ही मन उसका ध्यान करते उसकी ही शरण में चला गया। इस प्रकार उस दैत्य तम ने राजा की महान् तपस्या का विनाश किया तथा वहां से अन्तर्हित् हो गया। तभी मैं भी राजा को वर देने के लिये वहां आया। मैंने राजा को तपोभ्रष्ट, विह्वल, मृतवत् देख कर उसे अनेक युक्तियों द्वारा आश्वस्त करके उस राजप्रवर से कहा—"तुम्हारा ही शत्रु तम नामक दैत्य तुम्हारी तपस्या को नाश करने स्त्री रूप में आया था। वह सफल होकर चला गया। अब शोक करना उचित ही नहीं है। सभी स्त्रियां मनुष्यों को आनन्दित तो करती ही हैं, साथ ही अनुतप्त भी कर देती हैं। यदि वह नारी मायामयी हो, तब उसकी बात ही क्या?" यह सुनकर राजा भ्रमरहित हो गया। उसने हाथ जोड़कर मुझसे कहा—॥१९-२४॥

राजोवाच

किं करोमि कथं ब्रह्मंस्तपसः पारमाप्नुयाम्॥२५॥

राजा कहते हैं—हे ब्रह्मन्! क्या करूं? क्या करूं, जिससे तपसिद्धि हो जाये॥२५॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तस्योत्तरं प्रादां देवदेवं जनार्दनम्। स्तुहि सर्वप्रयत्नेन ततः सिद्धिमवाप्स्यसि॥२६॥
स ह्येशेषजगत्स्त्रष्टा वेदवेद्यः पुरातनः। सर्वार्थसिद्धिदः पुंसां नान्योऽस्ति भुवनत्रये॥२७॥
स जगाम नगश्रेष्ठं हिमवन्तं नृपोत्तमः। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विष्णुं तुष्टाव भक्तितः॥२८॥

ब्रह्मा कहते हैं—मैंने राजा से कहा—"तुम सर्व प्रयत्न पूर्वक देव जनार्दन की स्तुति करो। इससे सिद्धि लाभ होगा। वे ही समस्त जगत् के स्त्रष्टा, वेद से ही ज्ञात होने वाले तथा पुरातन हैं। वे भिन्न-भिन्न सभी प्रकार के लोगों को सर्वार्थ देने वाले हैं। ऐसा तीनों लोक में कोई नहीं है।" यह सुनकर राजा पर्वतप्रवर हिमालय पर जाकर भक्तिभाव के साथ हाथ जोड़कर विष्णुस्तव करने लगे॥२६-२८॥

धन्वन्तरिरुवाच

जय विष्णो जयाचिन्त्य जय जिष्णो जयाच्युत्।
जय गोपाल लक्ष्मीश जय कृष्ण जगन्मय॥२९॥
जय भूतपते नाथ जय पन्नगशायिने। जय सर्वग गोविन्द जय विश्वकृते नमः॥३०॥
जय विश्वभुजे देव जय विश्वधृते नमः। जयेश सदसत्त्वं वै जय माधव धर्मिणे॥३१॥
जय कामद काम त्वं जय राम गुणार्णव। जय पुष्टिद पुष्टीश जय कल्याणदायिने॥३२॥
जय भूतप भूतेश जय मानविधायिने। जय कर्मद कर्म त्वं जय पीताम्बरच्छद॥३३॥

जय सर्वेश सर्वस्त्वं जय मङ्गलरूपिणे। जय सत्त्वाधिनाथाय जय वेदविदे नमः॥३४॥

धन्वन्तरी कहते हैं—हे अचिन्त्य! विष्णु, जिष्णु, अच्युत, गोपाल, लक्ष्मीपति, जगन्मय, कृष्ण, भूतपति, सर्वग, गोविन्द, नाथ! आपकी जय हो! हे सर्प शय्या पर शयन करने वाले विश्वकर्त्ता! आपको नमस्कार! आपही देव विश्वभुक् हैं। आपको प्रणाम! हे विश्व को धारण करने वाले! आपकी जय हो! आपको नमस्कार! जय ईश, माधव, सदसदात्मक, धर्मरूपी कामप्रद! आपको नमस्कार! आप ही काम, राम, गुणार्थ, पुष्टिप्रद, पुष्टीश, भूतेश, मान विधान कर्त्ता हैं। आपको नमस्कार! जय कर्दम, भर्त्ता, पीताम्बरधारी, सर्वेश, सर्व, मंगलरूप, सत्वाधिनाथ वेदविद्! आपकी जय हो! आपको प्रणाम!॥२९-३४॥

जय जन्मद जन्मिस्थ परमात्मन्नमोऽस्तु ते।
जय मुक्तिद मुक्तिस्त्वं जय भुक्तिद केशव॥३५॥
जय लोकद लोकेश जय पापविनाशन। जय वत्सल भक्तानां जय चक्रधृते नमः॥३६॥
जय मानद मानस्त्वं जय लोकनमस्कृत। जय धर्मद धर्मस्त्वं जय संसारपारग॥३७॥
जय अन्नद अन्नं त्वं जय वाचस्पते नमः। जय शक्तिद शक्तिस्त्वं जय जैत्रवरप्रद॥३८॥
जय यज्ञद यज्ञस्त्वं जय पद्मदलेक्षण। जय दानद दानं त्वं जय कैटभसूदन॥३९॥
जय कीर्तिद कीर्तिस्त्वं जय मूर्तिद मूर्तिधृक्।
जय सौख्यद सौख्यात्मञ्जय पावनपावन॥४०॥
जय शान्तिद शान्तिस्त्वं जय शङ्करसम्भव।
जय पानद पानस्त्वं जय ज्योतिःस्वरूपिणे॥४१॥
जय वामन वित्तेश जय धूमपताकिने। जय सर्वस्य जगतो दातृमूर्ते नमोऽस्तु ते॥४२॥
त्वमेव लोकत्रयवर्तिजीवनिकायसंक्लेशविनाशदक्ष।
श्रीपुण्डरीकाक्ष कृपानिधे त्वं, निधेहि पाणिं मम मूर्ध्नि विष्णो॥४३॥

जय जन्मप्रद, जन्मिस्थ, परमात्मा, मुक्ति देने वाले, मुक्तिरूप, भक्तिप्रद, केशव, लोकद, लोकेश, पापनाशक, भक्तवत्सल, चक्रधारी, मानद, मान, लोकनमस्कृत, धर्मप्रद, धर्म! आपकी जय हो! आपको नमस्कार! संसार से पार करने वाले, अन्नदाता, अन्न, वाचस्पति, शान्तिप्रद, शान्ति, सर्वजय वर प्रदाता आप हैं। आपकी सदा जय हो! आपको नमस्कार! जय यज्ञदाता, यज्ञ, पद्मदलेक्षण, दानदाता, दानरूप, कैटभसूदन, कीर्त्तिप्रद, कीर्त्ति, मूर्त्तिप्रद, मूर्त्तिधारी, सौख्यप्रद, सौख्यात्मा, पावन-पावन, शास्ति देने वाले, शास्ति आपकी जय हो! आपको नमस्कार! हे शंकरसंभव! पानद, पानरूप, ज्योतिरूप, वामन, वित्तेश, धूमपताकी आपकी जय हो। आपको नमस्कार! आप समस्त संसार को दान देने वाले मूर्त्ति रूप हैं। आपकी जय हो! आपको नमस्कार! हे पुण्डरीकाक्ष! लोकत्रय के निवासी जनों के क्लेशनाशार्थ आप समर्थ हैं। हे कृपानिधि विष्णु! मेरे मस्तक पर आप अपना हाथ रखिये॥३५-४३॥

ब्रह्मोवाच

एवं स्तुवन्तं भगवाञ्शङ्खचक्रगदाधरः। वरेण च्छन्दयामास सर्वकामसमृद्धिदः॥४४॥

धन्वन्तरिः प्रीतमना वरदानेन चक्रिणः। वरदानाय देवेशं गोविन्दं संस्थितं पुरः॥४५॥

तमाह नृपतिः प्रह्वः सुरराज्यं ममेप्सितम्।
तच्च दत्तं त्वया विष्णो प्राप्तोऽस्मि कृतकृत्यताम्॥४६॥

ब्रह्मा कहते हैं—इस स्तव के करने से सर्वकामसमृद्ध भगवान् शंख-चक्र-गदाधारी उनको वर देने हेतु उद्यत हो गया। धन्वन्तरी ने चक्रपाणि देव को वर देने के लिये जब उद्यत देखा, तब वे प्रसन्न मन से सामने स्थित उन देवेश गोविन्द से उन्होंने देवताओं का राज्य मांगा। भगवान् ने उनको देवराज्य प्रदान कर दिया। तब राजा धन्वन्तरि ने कहा—"हे विष्णु! मैं देवराज्य पाकर कृतार्थ हो गया।।४४-४६।।

स्तुतः संपूजितो विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत। तथैव त्रिदशेशत्वमवाप नृपतिः क्रमात्॥४७॥
प्रागर्जितानेककर्मपरिपाकवशात्ततः। त्रिःकृत्वो नाशमगमत्सहस्राक्षः स्वकात्पदात्॥४८॥
नहुषाद्वृत्रहत्यायाः सिन्धुसेनवधात्ततः। अहल्यायां च गमनाद्येन केन च हेतुना॥४९॥
स्मारं स्मारं तत्तदिन्द्रश्चिन्तासंतापदुर्मनाः। ततः सुरपतिः प्राह वाचस्पतिमिदं वचः॥५०॥

भगवान् विष्णु राजा द्वारा पूजित तथा स्तुत होकर अन्तर्हित् हो गये। क्रमशः राजा ने देवराज का पद प्राप्त कर लिया। तथापि पूर्वजन्म के कृत कर्मों के कारण वे सहस्राक्ष होकर भी तीन बार अपने पद से च्युत किये गये। प्रथम बार वृत्रासुर की हत्या के कारण नहुष द्वारा, द्वितीय बार सिन्धुसेन वध करने के कारण तथा तृतीय बार अहल्या से अनुचित समागम के कारण पदभ्रष्ट हुये। वे इन्द्र उन पतन वाली स्थितियों तथा उनके कारणों का चिन्तन करने के कारण चिन्ता संताप के कारण दुर्मना हो गये, तब उन सुरपति ने बृहस्पति से प्रश्न किया।।४७-५०।।

इन्द्र उवाच

हेतुना केन वागीश भ्रष्टराज्यो भवाम्यहम्।
मध्ये मध्ये पदभ्रंशाद्वरं निःश्रीकता नृणाम्॥५१॥
गहनां कर्मणां जीवगतिं को वेत्ति तत्त्वतः। रहस्यं सर्वभावनां ज्ञातुं नान्यः प्रगल्भते॥५२॥

इन्द्र कहते हैं—हे वागीश! मैं किस कारण से राज्यभ्रष्ट हो गया? बार-बार पदच्युत होने से तो अच्छा है कि चिर दरिद्र ही रहना। हे बृहस्पति! कर्मसमूह की गति कौन जानता है? आपके अतिरिक्त इस सर्वभाव के रहस्य को सम्यक्तः और कौन जान सकता है?।।५१-५२।।

ब्रह्मोवाच

बृहस्पतिर्हरिं प्राह ब्रह्माणं पृच्छ गच्छ तम्।
स तु जानाति यद्भूतं भविष्यच्चापि वर्तनम्॥५३॥
स तु वक्ष्यति येनेदं जातं तच्च महामते। तावागत्य महाप्राज्ञौ नमस्कृत्य ममन्तिकम्।
कृताञ्जलिपुटौ भूत्वा मामूचतुरिदं वच॥५४॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब बृहस्पति ने इन्द्र से कहा—"तुम ब्रह्मा के पास जाओ। उनसे प्रश्न करो। वे

समस्त भूत-वर्त्तमान-भविष्य के ज्ञाता हैं। तुम्हारी यह दशा जिस कारण से हो गयी है, वे ही तुमसे कहेंगे।" तब वे दोनों महाप्राज्ञ मेरे पास आये तथा मुझे प्रणाम करके हाथ जोड़ कर उन्होंने अपना वृत्तान्त कहना प्रारम्भ कर दिया।।५३-५४।।

इन्द्रबृहस्पती ऊचतुः

भगवन्केन दोषेण शचीभर्ता उदारधीः। राज्यात्प्रभ्रश्यते नाथ संशयं छेत्तुमर्हसि।।५५।।

इन्द्र तथा बृहस्पति ने कहा—हे प्रभो! उदारबुद्धि शचीपति इन्द्र किस दोष से राज्यभ्रष्ट हुये? हे नाथ! हमारे संशय का उच्छेद करिये।।५५।।

ब्रह्मोवाच

तदाऽहमब्रवं ब्रह्मंश्चिरं ध्यात्वा बृहस्पतिम्। खण्डधर्माख्यदोषेण तेन राज्यपदाच्च्युतः।।५६।।
देशकालादिदोषेण श्रद्धामन्त्रविपर्ययात्। यथावद्दक्षिणादानादसद्द्रव्यप्रदानतः।।५७।।
देवभूदेवतावज्ञापातकाच्च विशेषतः। यत्खण्डत्वं स्वधर्मस्य देहिनामुपजायते।।५८।।
तेनातिमानसस्तापः पदहानिश्च दुस्त्यजा। कृतोऽपि धर्मोऽनिष्टाय जायते क्षुब्धचेतसा।।५९।।
कार्यस्य न भवेत्सिद्धयै तस्मादव्याकुलाय च।
असंपूर्णे स्वधर्मे हि किमनिष्टं न जायते।।६०।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे ब्रह्मन्! तब मैंने कुछ चिन्तन करके उनसे कहा—"इसका कारण है खण्डधर्म। इनको देश-काल के दोष से राज्यच्युति हो गई है। श्रद्धा-मन्त्रादि का विपर्यय, यथायोग्य दक्षिणा न देना, असत् द्रव्य का दान, देवता-ब्राह्मण का अपमान, इससे मनुष्य का धर्म खण्डित हो जाता है। अन्य विशेष-विशेष पातकों के कारण मानव के प्रारब्ध कार्य से जो खण्डत्व होता है, उसी के कारण घोर मनःस्ताप तथा दुर्निवार्य पद हानि होती है। क्षुब्ध चित्त से धर्मकार्य अनुष्ठित होने से भी इष्टसिद्धि नहीं होती, अपितु अनिष्ट होता है। इसीलिये धर्म-कर्म अव्याकुलभाव से करना चाहिये। स्वधर्म जब असम्पूर्ण रह जाता है, तब कैसा अनिष्ट नहीं होता।।५६-६०।।

ताभ्यां यत्पूर्ववृत्तान्तं तदप्युक्तं मयाऽनघ।
आयुषस्तु सुतःश्रीमान्धन्वन्तरिरुदारधीः।।६१।।
तमसा च कृतं विघ्नं विष्णुना तच्च नाशितम्।
पूर्वजन्मसु वृत्तान्तमित्यादि परिकीर्तितम्।।६२।।
तच्छ्रुत्वा विस्मतौ चोभौ मामेव पुनरूचतुः।।६३।।

हे निष्पाप! उनसे मैंने धन्वन्तरि इन्द्र का पूर्व-वृत्तान्त भी कहा था। आयु के पुत्र श्रीमान् उदारचेता धन्वन्तरी का तम नामक दैत्य द्वारा जिस प्रकार से विघ्न किये जाने के कारण कार्य खण्डित हुआ था तथा विष्णु ने उनको पुनः वर देकर उनको स्वस्थ किया था, उस पूर्व विवरण को सुनकर विस्मित होकर उन्होंने पुनः मुझसे कहा—।।६१-६३।।

इन्द्रबृहस्पती ऊचतुः

तद्दोषप्रतिबन्धस्तु केन स्यात्सुरसत्तम॥६४॥

इन्द्र-बृहस्पति कहते हैं—हे देवप्रवर! यह दोष कैसे निवृत्त होगा? वह कहिये।।६४।।

ब्रह्मोवाच

पुनर्ध्यात्वा तावदं श्रूयतां दोषका (हा) रकम्।
कारणं सर्वसिद्धानां दुःखसंसारतारणम्॥६५॥
शरणं तप्तचित्तानां निर्वाणं जीवतामपि। गत्वा तु गौतमीं देवीं स्तूयेतां हरिशंकरौ॥६६॥
नोपायोऽन्योऽस्ति संशुद्ध्यै तौ तां हित्वा जगत्त्रये।
तदैव जग्मतुरुभौ गौतमीं मुनिसत्तम।
स्नातौ कृतक्षणौ चोभौ देवौ तुष्टुवतुर्मुदा॥६७॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब मैंने किंचित् ध्यानोपरान्त उनसे कहा—"अब तुम लोग दोषनाशक उपाय सुनो। तुम लोग गौमतीतट पर जाकर तत्त्ववेत्तागण के एकमात्र शरण्य तथा जीवन में निर्वाण सुख देने वाले हरि तथा प्रभु शंभु का स्तव करो। गौमतीगंगा, हरि तथा शंकर इनके अतिरिक्त त्रैलोक्य में अन्य कोई भी उपाय इसके लिये नहीं है। उसी से दोषशुद्धि होगी।" हे मुनिप्रवर नारद! तब वे दोनों गौमतीतट पर गये। वहां स्नानादि सम्पन्न करके उन्होंने आनन्दमय मन से हरि तथा शंकर का स्तव प्रारम्भ किया। वे हरि एवं शंकर को प्रसन्न करने लगे।।६५-६७।।

इन्द्र उवाच

नमो मत्स्याय कूर्माय वराहाय नमो नमः। नरसिंहाय देवाय वामनाय नमो नमः॥६८॥
नमोऽस्तु हयरूपाय त्रिविक्रम नमोऽस्तु ते।
नमोऽस्तु बुद्धरूपाय रामरूपाय कल्किने॥६९॥
अनन्तायाच्युतायेश जामदग्न्याय ते नमः। वरुणेन्द्रस्वरूपाय यमरूपाय ते नमः॥७०॥
परमेशाय देवाय नमस्त्रैलोक्यरूपिणे।
बिभ्रत्सरस्वतीं वक्त्रे सर्वज्ञोऽसि नमोऽस्तु ते॥७१॥
लक्ष्मीवानस्यतो लक्ष्मीं बिभ्रद्वक्षसि चानघ। बहुबाहूरूपादस्त्वं बहुकर्णाक्षिशीर्षकः।
त्वामेव सुखिनं प्राप्य बहवः सुखिनोऽभवन्॥७२॥
तावन्निःश्रीकता पुंसां मालिन्यं दैन्यमेव वा।
यावन्न यान्ति शरणं हरे त्वां करुणार्णवम्॥७३॥

इन्द्र कहते हैं—प्रभु मत्स्यदेव को प्रणाम! कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन देव को प्रणाम! मैं हयग्रीव को प्रणाम करता हूं! हे त्रिविक्रम! आपने तीन पग से सम्पूर्ण भुवनों को नापा है। आपको प्रणाम! बुद्धरूप, राम

तथा कल्कि रूप में अवतरित होने वाले हैं। आपको प्रणाम! हे ईश्वर! आप अनन्त, अच्युत, परशुराम, वरुण, इन्द्र एवं यम रूप हैं। आपको प्रणाम! आप त्रैलोक्यरूप परमेश्वर हैं, आप सर्वज्ञ हैं, आपके मुख में सरस्वती का निवास है। आपको प्रणाम! आपके वक्ष में लक्ष्मी का निवास है। हे निष्पाप! तभी आप लक्ष्मीवान् हैं। आप अनेक बाहु, उरु तथा पैरों वाले, अनेक कान, आंख, शिर वाले हैं। आप ही सुखी हैं। आपको पाकर बहुत से लोग सुखी हो गये हैं। हे देव! लोग जब तक आप करुणार्णव की शरण ग्रहण नहीं करते, तभी तक उनमें दरिद्रता, मलीनता तथा दीनता रहती है।।६८-७३।।

बृहस्पतिरुवाच

सूक्ष्मं परं जो (ज्यो) तिरनन्तरूपमोंकारमात्रं प्रकृतेः परं यत्।
चिद्रूपमानन्दमयं समस्तमेवं वदन्तीश मुमुक्षवस्त्वाम्॥७४॥
आराधयन्त्यत्र भवन्तमीशं, महामखैः पञ्चभिरप्यकामाः।
संसारसिन्धोः परमाप्तकामा, विशन्ति दिव्यं भुवनं वपुस्ते॥७५॥

बृहस्पति कहते हैं—हे ईश्वर! मुमुक्षु लोग आपको सूक्ष्म, अनन्त, ओंकारात्मक, प्रकृति से परे, चिद्रूप, आनन्दमय, अथच यह समग्र जगत्प्रपञ्चरूपी कहते हैं। जगत् में निष्काम, कामनारहित होकर भी वे ईश्वर को अपनी पंचविध महायज्ञ अर्चना से कृतार्थ करते हैं। ईश्वर उनको उस संसार सिन्धु से दिव्य भुवन में प्रवेश करा देते हैं। वह दिव्य भुवन उनका ही शरीर है।।७४-७५।।

सर्वेषु सत्त्वेषु समत्वबुद्ध्या, संवीक्ष्य षट्सूर्मिषु शान्तभावाः।
ज्ञानेन ते कर्मफलानि हित्वा, ध्यानेन ते त्वां प्रविशन्ति शम्भो॥७६॥
न जातिधर्माणि न वेदशास्त्रं, न ध्यानयोगो न समाधिधर्मः।
रुद्रं शिवं शङ्करं शान्तचित्तं, भक्त्या देवं सोममहं नमस्ये॥७७॥
मूर्खोऽपि शम्भो तव पादभक्त्या, समाप्नुयान्मुक्तिमयीं तनुं ते।
ज्ञानेषु यज्ञेषु तपःसु चैव, ध्यानेषु होमेषु महाफलेषु॥७८॥

हे शंभु! सबमें सम बुद्धि रखने वाले, षड्विध संसार उर्मि में भी, (भूख, प्यास, लोभ, मोह, ग्रीष्म, शीत) इस अज्ञानात्मक चित्त विकार में भी अविचलित चित्त होकर ज्ञान प्रभाव से कर्मफल को त्याग कर ध्यान द्वारा आपमें प्रविष्ट हो जाते हैं। आपको पाने के लिये जातिधर्म, वेद-शास्त्रज्ञान, ध्यान-योग बल समाधि धर्म मुझमें लेशमात्र भी नहीं हैं। इनमें से किसी से भी आपको नहीं पाया जा सकता। इसलिये मैं भक्ति के साथ जगत् के मंगल को करने वाले सोममूर्त्ति रुद्र को प्रणाम करता हूं! हे शंभु! आपके चरणों में भक्ति करके मूर्ख भी मुक्तिमयी मूर्त्ति को पा जाता है। नाना ज्ञान-यज्ञ-तप-ध्यान-होमादि जो कुछ महाफलप्रद कार्य हैं, अहर्निश सोमेश्वर की भक्ति प्राप्त हो जाना ही उनका उत्तम फल है।।७६-७८।।

सम्पन्नमेतत्फलमुत्तमं यत्सोमेश्वरे भक्तिरहर्निशं यत्।
स्वर्गस्य जीवस्य सदा प्रियस्य, फलस्य दृष्टस्य तथा श्रुतस्य॥७९॥

स्वर्गस्य मोक्षस्य जगन्निवास, सोपानपङ्क्तिस्तव भक्तिरेषा।
त्वत्पादसम्प्राप्तिफलाप्तये तु, सोपानपङ्क्तिं न वदन्ति धीराः॥८०॥
तस्माद्दयालो मम भक्तिरस्तु, नैवास्त्युपायस्तव रूपसेवा।
आत्मीयमालोक्य महत्त्वमीश, पापेषु चास्मासु कुरु प्रसादम्॥८१॥

हे जगन्निवास! सभी प्राणियों द्वारा सतत् प्रार्थित जो कुछ देखा गया तथा सुना गया फल है, वह स्वर्ग एवं मोक्षात्मक फल पाने हेतु आपके प्रति की गई भक्ति ही सोपान रूप है। तथापि धीर बुद्धि वालों ने आपके चरणाश्रय रूपी फल पाने के लिये किसी भी सोपानपंक्ति (सीढ़ियों) का निर्देश नहीं किया है। सचराचर जगत् के जो अन्तरात्मा हैं, जो कर्त्ता, हर्त्ता तथा परिपोषक हैं, ऐसे आपको, आपकी ही माया से मोहित चित्त होने के कारण मन्दबुद्धि लोग नहीं जान पाते। हे दयालु! आपके प्रति मेरी भक्ति सतत् बनी रहती है। आपकी रूप सेवा के अतिरिक्त मेरे पास अन्य उपाय है ही नहीं। हे ईश्वर! आप स्वयं अपने महत्व का स्मरण रखते हुये मुझ जैसे पापी के प्रति कृपा करिये।।७९-८१।।

स्थूलं च सूक्ष्मं त्वमनादि नित्यं, पिता च माता यदसच्च सच्च।
एवं स्तुतो यः श्रुतिभिः पुराणैर्नमामि सोमेश्वरमीशितारम्॥८२॥

हे प्रभो! आप स्थूल-सूक्ष्म, अनादि, नित्य, जगत् के पिता-माता, सत्-असत्, जो कुछ भी है, वह सब आप ही हैं। पुराने मुनिगण जिनका स्तव स्तुतिवाक्य द्वारा सदा करते हैं, उन सोमेश्वर ईश्वर को प्रणाम करता हूं!॥८२॥

ब्रह्मोवाच

ततः प्रीतौ हरिहरावूचतुस्त्रिदशेश्वरौ॥८३॥

ब्रह्मा कहते हैं—इस स्तुति से हरि एवं हर ने प्रसन्न होकर इन्द्र तथा बृहस्पति से कहा—॥८३॥

हरिहरावूचतुः

व्रियतां यन्मनोभीष्टं यद्वरं चातिदुर्लभम्॥८४॥

प्रसन्न होकर हरि-हर कहते हैं—तुम लोग अपना वर मांगो। अति दुर्लभ हो, तब भी मांग लो।।८४।।

ब्रह्मोवाच

इन्द्र प्राह सुरेशानं मद्राज्यं तु पुनः पुनः। जायते भ्रश्यते चैव तत्पापमुपशाम्यताम्॥८५॥
यथा स्थिरोऽहं राज्ये स्यां सर्वं स्यान्निश्चलं मम।
सुप्रीतौ यदि देवेशौ सर्वं स्यान्निश्चलं सदा॥८६॥
तथेति हरिवाक्यं तावभिन्नद्येदमूचतुः। परं प्रसादमापन्नौ तावालोक्य स्मिताननौ॥८७॥
निरपायनिराधारनिर्विकारस्वरूपिणौ। शरण्यौ सर्वलोकानां भुक्तिमुक्तिप्रदावुभौ॥८८॥

ब्रह्मा कहते हैं—इन्द्र ने महेश्वर से कहा—"जिस पूर्व पाप के कारण बारम्बार राज्य मिलकर भी मुझसे छीन लिया जाता है, उस पाप को शान्त करें। जिस प्रकार मैं अपना राज्य स्थिर रख सकूं, जिससे मेरा सभी

राज्य-ऐश्वर्य स्थिर हो जाये, अधिकार भी अचल हो, वह वर प्रदान करिये।" यह सुनकर विष्णु ने कहा—"यही हो" यह वाणी सुनकर बृहस्पति तथा इन्द्र ने उन देवद्वय को प्रणाम किया तथा कहने लगे "आप अविनाशी, निराधार, निर्विकार, सर्वलोकरक्षक, भोग-मोक्षप्रदायक हैं। आप दोनों को प्रसन्न देखकर हम उभय अतीव आनन्दित भी हैं।।८५-८८।।

हरिहरावूचतुः

त्रिदैवत्यं महातीर्थं गौतमी वाञ्छितप्रदा। तस्यामनेन मन्त्रेण कुरुतां स्नानमादरात्।।८९।।
अभिषेकं महेन्द्रस्य मङ्गलाय बृहस्पतिः। करोतु संस्मरन्नावां संपदां स्थैर्यसिद्धये।।९०।।
इह जन्मनि पूर्वस्मिन्यत्किंचित्सुकृतं कृतम्। तत्सर्वं पूर्णतामेतु गोदावरि नमोऽस्तु ते।।९१।।
एवं स्मृत्वा तु यः कश्चिद्गौतम्यां स्नानमाचरेत्।
आवाभ्यां तु प्रसादेन धर्मः संपूर्णतामियात्।
पूर्वजन्मकृताद्दोषात्स मुक्तः. पुण्यवान्भवेत्।।९२।।

हरि-हर कहते हैं—गौमतीनदी त्रिदैवत्य हैं। यह महातीर्थ वांछित फलप्रद है। उस नदी में भक्ति के साथ स्नान करो। बृहस्पति इन्द्र के मंगलार्थ सम्पत्ति की स्थिरता हेतु हम दोनों का स्मरण करके अभिषेक करें। "हे गोदावरी! मैंने इस जन्म में अथवा जन्मान्तर में जो कुछ सुकृत किया हो, वह सब पूर्णता लाभ करे। आपको नमस्कार!" यह मन्त्र पढ़ कर जो कोई गौतमी में स्नान करेगा, हम लोगों की कृपा से उसके द्वारा किया असम्पूर्ण धर्म भी सम्पूर्णता लाभ करेगा। जो लोग पूर्वजन्मकृत पशुधर्म दोषयुक्त रहे हों, वे भी पुण्यमय हो जाते हैं।।८९-९२।।

ब्रह्मोवाच

तथेति चक्रतुः प्रीतौ सुरेन्द्रधिषणौ ततः। महाभिषेकमिन्द्रस्य चकार द्युसदां गुरुः।।९३।।

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर देवराज तथा बृहस्पति ने उसे करने की स्वीकृति देकर प्रसन्न चित्त से वहां से प्रस्थान किया। देवगुरु ने इन्द्र का महाभिषेक कर दिया।।९३।।

तेनाभूद्या नदी पुण्या मङ्गलेत्युदिता तु सा।
तया च संगमः पुण्यो गङ्गायाः शुभदस्त्वसौ।।९४।।
इन्द्रेण संस्तुतौ विष्णुः प्रत्यक्षोऽभूज्जगन्मयः।
त्रिलोकसंमितां शक्रो भूमिं लेभे जगत्पतेः।।९५।।
तन्नाम्ना चापि विख्यातो गोविन्दो इति तत्र च।
त्रिलोकसंमिता लब्धा तेन गौर्वज्रधारिणा।।९६।।
दत्ता च हरिणा तत्र गोविन्दस्तदभूद्धरिः।
त्रैलोक्यराज्यं यत्प्राप्तं हरिणा च हरेर्मुने।।९७।।
निश्चलं येन (तच्च) संजातं देवदेवान्महेश्वरात्। बृहस्पतिर्देवगुरुर्यत्रास्तौषीन्महेश्वरम्।।९८।।

राज्यस्य स्थिरभावाय देवेन्द्रस्य महात्मनः।
सिद्धेश्वरस्तत्र देवो लिङ्गं तु त्रिदशार्चितम्॥९९॥

उस अभिषेक जल से एक पुण्या नदी उत्पन्न हो गयी। उसका नाम पड़ा मंगला। जहां गौमतीगंगा से उस नदी का संगम हुआ, वह पुण्यमय स्थान है। इन्द्र के स्तव से प्रसन्न होकर जगन्मय प्रभु विष्णु वहां स्वयं आविर्भूत हो गये थे। उन जगत्पति की कृपा से इन्द्र ने त्रैलोक्यराज्य लाभ किया था। भगवान् वहां गोविन्द नाम से प्रसिद्ध हैं। हे मुनिवर नारद! वज्रधारी इन्द्र ने वहां त्रैलोक्यवन्द्या गौ (धरती) प्राप्त किया था। हरि ने यहां इन्द्र को गौ दिया था। तभी हरि ही गोविन्द हो गये। इन्द्र ने हरि से त्रैलोक्यराजत्व लाभ किया। उसे देवदेव महेश्वर ने अचल कर दिया। देवगुरु बृहस्पति ने महात्मा देवेन्द्र के राज्य की स्थिरता के लिये जहां महेश्वर का स्तव किया था, वहीं पर देवदेव महेश्वर देवपूजित सिद्धेश्वर लिंग रूप में तथा इसी नाम से विराजमान हैं।।९४-९९।।

ततः प्रभृति तत्तीर्थं गोविन्दमिति विश्रुतम्।
मङ्गलासंगमं चैव पूर्णतीर्थं ततः परम्॥१००॥
इन्द्रतीर्थमिति ख्यातं बार्हस्पत्यं च विश्रुतम्।
यत्र सिद्धेश्वरो देवो विष्णुर्गोविन्द एव च॥१०१॥
तेषु स्नानं च दानं च यत्किंचित्सुकृतार्जनम्। सर्वं तदक्षयं विद्यात्पितृणामतिवल्लभम्॥१०२॥
शृणोति यश्चापि पठेद्यश्च स्मरति नित्यशः। तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं भ्रष्टराज्यप्रदायकम्॥१०३॥
सप्तत्रिंशत्सहस्राणि तीर्थानां तीरयोर्द्वयोः। उभयोर्मुनिशार्दूल सर्वसिद्धिप्रदायिनाम्॥१०४॥
न पूर्णतीर्थसदृशं तीर्थमस्ति महाफलम्। निष्फलं तस्य जन्मादि यो न सेवेत तन्नरः॥१०५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये उभयोस्तीरयोः पूर्णतीर्थमङ्गलासङ्गमगोविन्द-सिद्धेश्वरादिसप्तत्रिंशत्सहस्रतीर्थवर्णनं नाम द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२२।।

गौतमीमाहात्म्ये त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५३।।

इसके पश्चात् काल से यह तीर्थ गोविन्द नाम से विख्यात हो गया। मंगला संगम, पूर्णतीर्थ, इन्द्रतीर्थ, विश्रुत बार्हस्पत्य तीर्थ तथा जहां सिद्धेश्वर देव और गोविन्द देव विद्यमान हैं, वहां स्नान-दानादि जो कुछ सुकृत किया जाता है, वह सब अक्षय हो जाता है। ये स्थान पितृगण को अत्यन्त प्रिय हैं। इस तीर्थ का माहात्म्य जो मनुष्य निरन्तर श्रवण करता है, पाठ करता है अथवा स्मरण करता है, उसे तीर्थफल की प्राप्ति होती है। उसे राज्य की भी प्राप्ति होती है। गौतमी नदी के दोनों ओर ऐसे सैंतीस हजार तीर्थ स्थित हैं। ये सभी सर्वसिद्धिदायक हैं। पूर्णतीर्थ ऐसा महाफल उत्पन्न करने वाला अन्य तीर्थ कोई नहीं है। जो इस तीर्थ की सेवा नहीं करता, उसका जन्म निष्फल ही है।।१००-१०५।।

।।द्वाविंशत्यधिकशततम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

रामतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

रामतीर्थमिति ख्यातं भ्रूणहत्याविनाशनम्। तस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते॥१॥
इक्ष्वाकुवंशप्रभवः क्षत्रियो लोकविश्रुतः। बलवान्मतिमाञ्शूरो यथा शक्रः पुरन्दरः॥२॥
पितृपैतामहं राज्यं कुर्वन्नास्ते यथा बलिः। तस्य तिस्त्रो महिष्यः स्यू राज्ञो दशरथस्य हि॥३॥
कौशल्या च सुमित्रा च कैकेयी च महामते। एताः कुलीनाः सुभगा रूपलक्षणसंयुताः॥४॥
तस्मिन्नाजनि राज्ये तु स्थितेऽयोध्यापतौ मुने। वसिष्ठे ब्रह्मविच्छ्रेष्ठे पुरोधसि विशेषतः॥५॥
न च व्याधिर्न दुर्भिक्षं न चावृष्टिर्न चाऽऽधयः।
ब्रह्मक्षत्रविशां नित्यं शूद्राणां च विशेषतः॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—भ्रूणहत्या पापनाशक रामतीर्थ नामक तीर्थ का नाम सुनने मात्र से मानव सर्वपाप रहित हो जाता है। इक्ष्वाकु वंश में क्षत्रिय राजा दशरथ थे, जो विद्वान्, प्रसिद्ध, बली तथा इन्द्र के समान एवं मतिमान थे। उन्होंने बलिराज के समान अपने पिता-पितामह के राज्य का पालन किया था। हे महामति! पत्नियां कौशल्या, सुमित्रा तथा कैकेयी कुलीन, रूपलावण्यमयी, सुभगा थीं। हे मुनिवर! अयोध्यापति दशरथ के शासनकाल में ब्रह्मविदों में श्रेष्ठ महर्षि वसिष्ठ उनके पुरोहित थे। अतः उनके राज्य शासन काल में चारों वर्ण वालों को कभी भी आधि-व्याधि, अकाल, अनावृष्टि प्रभृति का कष्ट कदापि नहीं होता था।।१-६।।

आश्रमाणां तु सर्वेषामानन्दोऽभूत्पृथक्पृथक्। तस्मिञ्शासति राजेन्द्र इक्ष्वाकूणां कुलोद्वहे॥७॥
देवानां दानवानां तु राज्यार्थे विग्रहोऽभवत्। क्वापि तत्र जयं प्रापुर्देवाः क्वापि तथेतरे॥८॥

उन इक्ष्वाकुकुल का यश वर्द्धन करने वाले राजा के राज्यत्व में चारों वर्ण वाले पृथक्-पृथक् आनन्दित रहते थे तथा सभी आश्रम वाले भी (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम) आनन्दित रहते थे। इनके शासन काल में देवता तथा दैत्यों का राज्य सम्बन्धित विवाद छिड़ जाने के कारण उनमें युद्ध होने लगा। युद्ध में कभी देवगण को तो कभी दैत्यों को विजयश्री मिलती।।७-८।।

एवं प्रवर्तमानो तु त्रैलोक्यमतिपीडितम्। अभून्नारद तत्राहमवदं दैत्यदानवान्॥९॥
देवांश्चापि विशेषेण न कृतं तैर्मदीरितम्। पुनश्च सङ्गरस्तेषां बभूव सुमहान्मिथः॥१०॥
विष्णुं गत्वा सुराः प्रोचुस्तथेशानं जगन्मयम्। तावूचतुरुभौ देवानसुरान्दैत्यदानवान्॥११॥

हे नारद! इस युद्ध से त्रैलोक्य पीड़ित हो उठा। तब मैंने दैत्यों तथा दानवों से विशेष रूप से कहा कि युद्ध से निवृत्त हो जाओ, तथापि वे रणदुर्मद उस आदेश को मानने से विरत ही रहे। उलटे उनमें और भी घनघोर युद्ध होने लगा। इस पर देवगण जगद्गुरु शंकर तथा विष्णु के पास गये तथा उनसे सब प्रसंग निवेदित किया। उन देवद्वय ने देवताओं तथा दैत्यों को बुलाया।।९-११।।

तपसा बलिनो यान्तु पुनः कुर्वन्तु संगरम्। तथेत्याहुर्ययुः सर्वे तपसे नियतव्रताः॥१२॥
ययुस्तु राक्षसान्देवाः पुनस्ते मत्सरान्विताः। देवानां दानवानां च सङ्गरोऽभूत्सुदारुणः॥१३॥
न तत्र देवा जेतारो नैव दैत्याश्च दानवाः। संयुगे वर्तमाने तु वागुवाचाशरीरिणी॥१४॥

उनसे इन देवद्वय ने कहा कि पहले तुम लोग तप करके बली बनो, तदनन्तर युद्ध करना। यह सुनकर देवता लोग एवं दैत्य लोग तपःश्चरण करने चले गये। तथापि पारस्परिक ईर्ष्या के कारण दोनों पक्ष पुनः युद्धरत हो गये। इस युद्ध में दोनों पक्ष में कोई एक पक्ष विजयी नहीं हो सका। तभी युद्ध के समय आकाशवाणी सुनाई पड़ी।।१२-१४।।

आकाशवागुवाच

येषां दशरथो राजा ते जेतारो न चेतरे॥१५॥

आकाशवाणी ने कहा—राजा दशरथ जिस पक्ष के साथ रहेंगे, उसे ही विजय मिलेगी।।१५।।

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा जयायोभौ जग्मतुर्देवदानवौ। तत्र वायुस्त्वरन्प्रान्तो राजानमवदत्तदा॥१६॥

आकाशवाणी सुनकर देवता तथा दैत्य दोनों पक्ष वाले दशरथ से मिलने चल पड़े। तब वायु तीव्र गति से राजा दशरथ के पास पहुंचकर कहने लगे।।१६।।

वायुरुवाच

आगन्तव्यं त्वया राजन्देवदानवसङ्गरे। यत्र राजा दशरथो जयस्तत्रेति विश्रुतम्॥१७॥
तस्मात्त्वं देवपक्षे स्या भवेयुर्जयिनः सुरा॥१८॥

वायु कहते हैं—"हे राजन्! राजा दशरथ जिस पक्ष की ओर रहेंगे, उसकी ही विजय होगी।" यह आकाशवाणी सुनकर मैं आपके यहां आया हूं। आप इस युद्ध में देवपक्ष के साथ रहिये। तभी देवताओं की विजय होगी।।१७-१८।।

ब्रह्मोवाच

तद्वायुवचनं श्रुत्वा राजा दशरथो नृपः।
आगम्यते मया सत्यं गच्छ वायो यथासुखम्॥१९॥
गते वायौ तदा दैत्या आजग्मुर्भूपतिं प्रति। तेऽप्यूचुर्भगवन्नस्मत्साहाय्यं कर्तुमर्हसि॥२०॥
राजन्दशरथ श्रीमन्विजयस्त्वयि संस्थितः।
तस्मात्त्वं वै दैत्यपतेः साहाय्यं कर्तुमर्हसि॥२१॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजा दशरथ ने वायु से कहा—"आप यथासुख प्रस्थान करिये। मैं आपके पक्ष में ही रहूंगा। यह मैंने सत्य वचन कहा है।" जब वायु प्रस्थान कर गये, तब दशरथ के पास दैत्यगण ने आकर कहा—"हे प्रभो! आप हमारी सहायता करिये। श्रीमान्! राजा दशरथ! विजय आपके हाथों में है। आप दैत्यराज की ही सहायता करिये"।।१९-२१।।

ततः प्रोवाच नृपतिर्वायुना प्रार्थितः पुराः।
प्रतिज्ञातं मया तच्च यान्तु दैत्याश्च दानवाः॥२२॥

राजा दशरथ ने यह सुनकर दैत्यों से कहा कि "हे दैत्य-दानवों! आप लोगों के आने के पहले ही मैंने वायु की प्रार्थना पर देवपक्ष की सहायता का वचन दे दिया। अतः अब आप लोग जायें"।।२२।।

स तु राजा तथा चक्रे गत्वा चैव त्रिविष्टपम्।
युद्धं चक्रे तथा दैत्यैर्दानवैः सह राक्षसैः॥२३॥
पश्यत्सु देवसंघेषु नमुचेर्भ्रातरस्तदा। विविधुर्निशितैर्बाणैरथाक्षं नृपतेस्तथा॥२४॥
भिन्नाक्षं तं रथं राजा न जानाति स संभ्रमात्।
राजान्तिके स्थिता सुभ्रूः कैकेय्याऽज्ञायि नारद॥२५॥
न ज्ञापितं तया राज्ञे स्वयमालोक्य सुव्रता।
भग्नमक्षं समालक्ष्य चक्रं हस्तं तदा स्वकम्॥२६॥
अक्षवन्मुनिशार्दूल तदेतन्महदद्भुतम्। रथेन रथिना श्रेष्ठस्तया दत्तकरेण च॥२७॥
जितवान्दैत्यदनुजान् देवः प्राप्य वरान्बहून्। ततो देवैरनुज्ञातस्त्वयोध्यां पुनरभ्यगात्॥२८॥

तदनन्तर राजा ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कार्य किया। उन्होंने स्वर्ग जाकर देवपक्ष की सहायता करते हुये दैत्यों-दानवों तथा राक्षसगण से युद्ध किया। इस युद्ध में दानव नमुचि के भ्राताओं ने राजा दशरथ के रथ की धुरी को अपने तीक्ष्ण बाणों से तोड़ दिया। युद्धरत राजा इस घटना को नहीं जान सके तथापि रथ पर बैठी रानी कैकेयी ने इसे जान लिया। हे नारद! उस सुभ्रु सुव्रता ने यह दुर्घटना राजा से नहीं कहा। उसने अपनी कलाई उस धुरी में लगाकर यह अत्यद्भुद् कर्म किया था। उधर श्रेष्ठतम रथी राजा दशरथ ने उसी रथ पर आरूढ़ स्थिति में दैत्य-दानवों को परास्त कर दिया। इससे प्रसन्न होकर उनको देवगण द्वारा अनेक वरदान भी मिला था। तदनन्तर देवगण की आज्ञा लेकर राजा दशरथ अयोध्या वापस आ गये।।२३-२८।।

स तु मध्ये महाराजे मार्गे वीक्ष्य तदा प्रियाम्।
कैकेय्याः कर्म तद्दृष्ट्वा विस्मयं परमं गतः॥२९॥
ततस्तस्यै वरान्प्रादात्त्रींस्तु नारद सा अपि।
अनुमान्य नृपप्रोक्तं कैकेयी वाक्यमब्रवीत्॥३०॥

तभी मार्ग में राजा ने अपनी पत्नी कैकेयी की ओर देखा, तब उनको कैकेयी के उस परम साहसिक कर्म का जब भान हुआ, वे आश्चर्यान्वित हो गये। इस पर राजा दशरथ ने रानी कैकेयी को तीन वरदान देने का वचन दिया। रानी ने तीनों वर लेना भविष्य पर छोड़ते हुये, वरों को स्वीकार करते राजा से कहा—।।२९-३०।।

कैकेय्युवाच

त्वयि तिष्ठन्तु राजेन्द्र त्वया दत्ता वरा अमी॥३१॥

रानी कैकेयी कहती हैं—हे राजेन्द्र! आप द्वारा प्रदत्त तीनों वर आपके पास सुरक्षित रहें (मैं समयानुकूल उनको ग्रहण कर लूंगी)।।३१।।

ब्रह्मोवाच

विभूषणानि राजेन्द्रो दत्त्वा स प्रियया सह। रथेन विजयी राजा ययौ स्वनगरं सुखी।।३२।।
योषितां किमदेयं हि प्रियाणामुचितागमे। स कदाचिद्दशरथो मृगयाशीलिभिर्वृतः।।३३।।
अटन्नरण्ये शर्वर्यां वारिबन्धमथाकरोत्। सप्तव्यसनहीनेन भवितव्यं तु भूभुजा।।३४।।
इति जानन्नपि च तच्चकार तु विधेर्वशात्।
गर्तं प्रविश्य पानार्थमागतान्निशितैः शरैः।।३५।।
मृगान्हन्ति महाबाहुः शृणु कालविपर्ययम्। गर्तं प्रविष्टे नृपतौ तस्मिन्नेव नगोत्तमे।।३६।।
वृद्धो वैश्रवणो नाम न शृणोति न पश्यति।
तस्य भार्या तथाभूता तावब्रूतां तदा सुतम्।।३७।।

ब्रह्मा कहते हैं—वे विजयी राजा कैकेयी को अनेक अलंकार प्रदान करके उसी रथ पर सुख पूर्वक अयोध्या आये। समुचित समय पर प्रिया स्त्री को देने के लिये अदेय क्या है? एक बार राजा दशरथ मृगया हेतु अनुचरों के साथ वन में भ्रमण कर रहे थे। रात्रि में राजा ने वहां के जलाशय का जल बांध कर रोकवा दिया। यह उक्ति है कि "राजा को सात प्रकार के व्यसनों से दूर रहना चाहिये (उनमें शिकार भी एक है)।" यह जान कर भी राजा ने जलावरोध करा दिया। वहां जल पीने के लिये आगत जन्तुओं का वध करने वह राजा वहीं एक गढ़े में छिप गया था। वहां से अपने तीक्ष्ण बाणों द्वारा वन्य जीवों का वध करने लगा। हे नारद! अब तुम कालविपर्यय का वर्णन सुनो। जिस पर्वत के गढ़े में छिप कर राजा प्राणीवध कर रहा था, उसी पर एक वृद्ध का निवास था, जो अन्ध-बधिर था। उसकी पत्नी भी अन्ध-बधिर थी। उन दम्पति ने तब अपने पुत्र से कहा—।।३२-३७।।

मातापितरावूचतुः

आवां तृषार्तौ रात्रिश्च कृष्णा चापि प्रवर्तते।
वृद्धानां जीवितं कृत्स्नं बालस्त्वमसि पुत्रक।।३८।।
अन्धानां बधिराणां च वृद्धानां धिक्च जीवितम्।
जराजर्जरदेहानां धिग्धिक्पुत्रक जीवितम्।।३९।।
तावत्पुंभिर्जीवितव्यं यावल्लक्ष्मीर्दृढं वपुः। यावदाज्ञाऽप्रतिहता तीर्थादावन्यथा मृतिः।।४०।।

माता-पिता कहते हैं—हे पुत्र! हमें प्यास लगी है। रात्रि भी अब अधिक अंधेरी हो गई है। तुम बालक हो। अतः हम बूढ़ों का जीवन धारण करना कठिन लग रहा है। अन्धे, बहरे वृद्ध का जीवन धिक्कार योग्य है। हे पुत्र! जराजर्जर वृद्ध के जीवन को पुनः-पुनः धिक्कार। जब तक शरीर श्रीयुक्त तथा दृढ़ हो, उसकी आज्ञा का अप्रतिहत पालन होता रहे, तभी तक जीवित रहे। उसके बाद भी यदि जीवन बचे, तब तीर्थादि जाकर प्राण त्याग कर देना ही उचित है।।३८-४०।।

ब्रह्मोवाच

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा वृद्धयोर्गुरुवत्सलः। पुत्रः प्रोवाच तद्दुःखं गिरा मधुरया हरन्॥४१॥

ब्रह्मा कहते हैं—उस पितृवत्सल सन्तान ने वृद्ध माता-पिता का यह वचन सुनकर दुःखित मन से मधुर शब्दों में उत्तर दिया॥४१॥

पुत्र उवाच

मयि जीवति किं नाम युवयोर्दुःखमीदृशम्। न हरत्यात्मजः पित्रोर्यश्चरित्रैर्मनोरुजम्॥४२॥

तेन किं तनुजेनेह कुलोद्वेगविधायिना॥४३॥

पुत्र कहता है—मेरे जीवित रहते आप इतने दुःखी क्यों हैं? जो पुत्र अपने कर्मों से माता-पिता के मन की पीड़ा का हरण नहीं करता, ऐसे कुल के उद्वेगजनक पुत्र का क्या प्रयोजन?॥४२-४३॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा पितरौ नत्वा तावाश्वास्य महामनाः।
तरुस्कन्धे समारोप्य वृद्धौ च पितरौ तदा॥४४॥

हस्ते गृहीत्वा कलशं जगाम ऋषिपुत्रकः। स ऋषिर्नतु राजानं जानाति नृपतिर्द्विजम्॥४५॥

उभौ सरभसौ तत्र द्विजा वारि समाविशत्। सत्वरं कलशे न्युब्जे वारि गृह्णन्तमाशुगैः॥४६॥

द्विजं राजा द्विपं मत्वा विव्याध निशितैः शरैः।
वनद्विपोऽपि भूपानामवध्यस्तद्विदन्नपि॥४७॥
विव्याध तं नृपः कुर्यान्न किं किं विधिवञ्चितः।
स विद्धो मर्मदेशे तु दुःखितो वाक्यमब्रवीत्॥४८॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह कहकर उस बालक ने एक कलश उठाया तथा माता-पिता को कंधे पर बैठाकर जल लेने के लिये चल पड़ा। ऋषिकुमार क्रमशः उस जलाशय में उतरा। वहां राजा दशरथ भी छिपे थे। ऋषिपुत्र को मृगया में रत राजा का कोई सन्धान नहीं था तथा न ही राजा को इन द्विज का कोई पता था। दोनों अपने-अपने कार्य में व्यग्रता से तत्पर थे। ऋषि बालक जैसे ही कलस को झुकाते हुये जल भर रहा था, तभी राजा ने उसे हाथी समझकर अपने तीखे बाण से उसे विद्ध कर दिया। वनैला हाथी राजाओं द्वारा अवध्य होता है। यह जानते हुये भी राजा दशरथ ने यह कार्य किया था। विधाता से वंचित व्यक्ति भला क्या नहीं करता! वह बाण ऋषिबालक को मर्म में लगा था। वह व्यथित होकर कहने लगा॥४४-४८॥

द्विज उवाच

केनेदं दुःखदं कर्म कृतं सद्ब्राह्मणस्य मे।
मैत्रो ब्राह्मण इत्युक्तो नापराधोऽस्ति कश्चन॥४९॥

ब्राह्मण बालक कहता है—किसने यह दुःखप्रद कार्य किया? मैं तो सद्ब्राह्मण हूं। ब्राह्मण सभी प्राणीगण का मित्र कहा गया है। मेरा कोई अपराध नहीं था॥४९॥

ब्रह्मोवाच

तदेतद्वचनं श्रुत्वा मुनेरार्तस्य भूपतिः। निश्चेष्टश्च निरुत्साहो शनैस्तं देशमभ्यगात्॥५०॥
तं तु दृष्ट्वा द्विजवरं ज्वलन्तमिव तेजसा। असावप्यभवत्तत्र सशल्य इव मूर्च्छितः॥५१॥
आत्मानमात्मना कृत्वा स्थिरं राजाऽब्रवीदिदम्॥५२॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजा उस आर्त्त मुनिबालक का कथन सुनकर स्तब्ध हो गये। वे उसे निश्चेष्ट होता देख कर निरुत्साह पूर्वक धीरे-धीरे उसकी ओर गये। उस द्विजवर को जो तेज से प्रदीप्त था, ऐसी अवस्था में देख कर राजा भी वैसे ही मूर्छित हो गये, मानों उनको भी बाण लगा हो। क्रमशः उन्होंने बुद्धि द्वारा स्वयं को स्थिर करके कहा—॥५०-५२॥

राजोवाच

को भवान्द्विजशार्दूल किमर्थमिह चाऽऽगतः।
वद पापकृते मह्यं वद मे निष्कृतिं पराम्॥५३॥
ब्रह्महा वर्णिभिः किंतु श्वपचैरपि जातुचित्।
न स्प्रष्टव्यो महाबुद्धे द्रष्टव्यो न कदाचन॥५४॥

राजा कहते हैं—हे द्विजशार्दूल! आप कौन हैं? यहां आपका आगमन कैसे हुआ? इस पापी से वह सब कहिये। आप इस महापाप से छुटकारे का उपाय भी कहिये। हे महाबुद्धि! ब्रह्मघाती का दर्शन-स्पर्श करना तो चाण्डाल के लिये भी मना है। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य की तो बात ही क्या॥५३-५४॥

ब्रह्मोवाच

तद्राजवचनं श्रुत्वा मुनिपुत्रोऽब्रवीद्वचः॥५५॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजा का वाक्य सुनकर मुनिपुत्र ने कहा—॥५५॥

मुनिपुत्र उवाच

उत्क्रमिष्यन्ति मे प्राणा अतो वक्ष्यामि किंचन।
स्वच्छन्दवृत्तिताज्ञाने विद्धि पाकं च कर्मणाम्॥५६॥
आत्मार्थं तु न शोचामि वृद्धौ तु पितरौ मम।
तयो शुश्रूषूकः कः स्यादन्धयोरेकपुत्रयोः॥५७॥
विना मया महारण्ये कथं तौ जीवयिष्यतः।
ममाभाग्यमहो कीदृक्पितृशुश्रूषणे क्षतिः॥५८॥
जाता मेऽद्य विना प्राणैर्हा विधे किं कृतं त्वया।
तथाऽपि गच्छ तत्र त्वं गृहीतकलशस्त्वरन्॥५९॥
ताभ्यां देह्युदपानं त्वं यथा तौ न मरिष्यतः॥६०॥

ब्राह्मण बालक कहता है—मेरे प्राण तो निकल रहे हैं। अतः कुछ कहता हूं। स्वेच्छाचार, अज्ञता तथा प्रारब्ध कर्म का परिणाम कैसा होता है, इसकी विवेचना करिये। मैं अपने जीवन हेतु शोक नहीं करता। मेरे माता-पिता अन्ध-बधिर-वृद्ध हैं। मैं उनका एकमात्र पुत्र हूं। अब उनकी सेवा-सुश्रूषा कौन करेगा? मेरे बिना इस महाअरण्य में वे किस प्रकार जीवन धारण कर सकेंगे? मेरा कैसा दुर्भाग्य है। मेरे प्राणों के न रहने पर पिता-माता की सेवा में व्याघात हो गया। हे विधाता! आपने यह क्या किया? जो भी हो, आप इस कलश का जल लेकर शीघ्र वहां जायें। उनको जल पिलायें, जिससे जलाभाव में उनकी मृत्यु न हो।।५६-६०।।

ब्रह्मोवाच

इत्येवं ब्रुवतस्तस्य गताः प्राणा महावने। विसृज्य सशरं चापमादाय कलशं नृपः॥६१॥

तत्रागात्स तु वेगेन यत्र वृद्धौ महावने।
वृद्धौ चापि तदा रात्रौ तावन्योग्यं समूचतुः॥६२॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह कहते-कहते उस बालक के प्राण निकल गये। राजा ने धनुष बाण वहीं फेंका तथा वे जल-कलश लेकर वेग पूर्वक वहां गये, जहां उस महावन में वे वृद्ध दम्पति थे। उस रात्रि में वे वृद्ध दम्पति परस्पर यह बात कर रहे थे।।६१-६२।।

वृद्धावूचतुः

उद्विग्नः कुपितो वा स्यादथवा भक्षितः कथम्।
न प्राप्तश्चाऽऽवयोर्यष्टिः किं कुर्मः का गतिर्भवेत्॥६३॥
न कोऽपि तादृशः पुत्रो विद्यते सचराचरे।
यः पित्रोरन्यथा वाक्यं न करोत्यपि निन्दितः॥६४॥
वज्रादपि कठोरं वा जीवितं तमपश्यतोः।
शीघ्रं न यान्ति यत्प्राणास्तदेकायत्तजीवयोः॥६५॥

वृद्ध दम्पति कहते हैं—हमारी बुढ़ापे की लाठी के समान पुत्र अभी तक क्यों नहीं आया? क्या वह डर गया अथवा कुपित हो गया अथवा किसी वन जन्तु ने उसे खा लिया? क्या गति हुई है? ऐसा पुत्र चराचर में नहीं है। वह निन्दा करने पर भी माता-पिता की आज्ञा की अवहेलना नहीं करता। हमारे प्राण तो वज्र से भी कठोर हैं, अन्यथा उसको न देख कर उसी के सहारे जीने वाले हमारे प्राण भी शीघ्र क्यों नहीं निकल जाते?।।६३-६५।।

ब्रह्मोवाच

एवं बहुविधा वाचो वृद्धयोर्वदतोर्वने। तदा दशरथो राजा शनैस्तं देशमभ्यगात्॥६६॥

पादसंचारशब्देन मेनाते सुतमागतम्॥६७॥

ब्रह्मा कहते हैं—वे दम्पति एवंविध विविध वार्त्तालाप कर रहे थे, तभी राजा दशरथ क्रमशः वहां धीरे-धीरे पहुंच गये। उनके पैरों की आहट से वृद्ध दम्पति ने यह समझा कि पुत्र वापस आ गया।।६६-६७।।

वृद्धावूचतुः

कुतो वत्स चिरात्प्राप्तस्त्वं दृष्टिस्त्वं परायणम्।
न ब्रूषे किन्तु रुष्टोऽसि वृद्धयोरन्धयोः सुतः॥६८॥

वृद्ध दम्पति कहते हैं—हे पुत्र! इतना विलम्ब क्यों किया? तुम ही हमारे नेत्र रूपी हो। तुम ही एकमात्र सहारा हो। कुछ बोलते क्यों नहीं? क्या तुम बूढ़े-अन्धे माता-पिता से रुष्ट हो?।।६८।।

ब्रह्मोवाच

सशल्य इव दुःखार्तः शोचन्दुष्कृतमात्मनः। स भीत इव राजेन्द्रस्तावुवाचाथ नारद॥६९॥
उदपानं च कुरुतां तच्छ्रुत्वा नृपभाषितम्।
नायं वक्ता सुतोऽस्माकं को भवांस्तत्पुरा वद॥७०॥
पश्चात्पिबावः पानीयं ततो राजाऽब्रवीच्च तौ॥७१॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारद! यह सुनकर राजा दशरथ मानों बाणों से आहत हो गये हों, यह अनुभव कर रहे थे। वे अपने दुष्कर्म पर पछताते हुये उन्होंने भयभीत चित्त से उन लोगों से कहा—"आप जल ग्रहण करिये।" राजा का शब्द सुन कर दम्पति ने कहा—"यह बोलने वाला हमारा पुत्र कदापि नहीं है। पहले यह कहो; तुम कौन हो, तब हम जल ग्रहण कर सकेंगे।।६९-७१।।

राजोवाच

तत्र तिष्ठति वां पुत्रो यत्र वारिसमाश्रयः॥७२॥

राजा कहते हैं—आपका पुत्र जलाशय पर है।।७२।।

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वोचतुरार्तौ तौ सत्यं ब्रूहि न चान्यथा। आचचक्षे ततो राजा सर्वमेव यथातथम्॥७३॥
ततस्तु पतितौ वृद्धौ तत्राऽऽवां नय मा स्पृश। ब्रह्मघ्नस्पर्शनं पापं न कदाचिद्विनश्यति॥७४॥
निन्ये स वै श्रवणं वृद्धं सभार्यं नृपसत्तमः। यत्रासौ पतितः पुत्रस्तं स्पृष्ट्वा तौ विलेपतुः॥७५॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर दम्पति ने आर्त स्वर में कहा—"सत्य कहो, मिथ्या मत कहना।" तदनन्तर राजा ने उनसे समस्त घटना व्यक्त किया। यह सुनते ही वे दम्पति मूर्च्छित होकर भूपतित हो गये। उन्होंने राजा से कहा—"हमें वहां ले चलो। तथापि हमारा स्पर्श मत करना, क्योंकि ब्रह्महत्यारे को छूने से जो पाप होता है, वह कदापि नष्ट नहीं होता।" तब राजा उन वृद्ध दम्पति को वहां ले गये, जहां उनका प्रिय पुत्र श्रवण शवरूपेण पड़ा था। वे दम्पति उसका स्पर्श करके रोने लगे।।७३-७५।।

वृद्धावूचतुः

यथा पुत्रवियोगेन मृत्युर्नो विहितस्तथा। त्वं चापि पाप पुत्रस्य वियोगान्मृत्युमाप्स्यसि॥७६॥

वृद्ध दम्पति कहते हैं—जिस प्रकार पुत्र वियोग से हमारी मृत्यु हो रही है, हे पापी! तुम भी इसी प्रकार पुत्र वियोग से मृत हो जाओगे।।७७।।

ब्रह्मोवाच

एवं तु जल्पतोर्ब्रह्मन्गताः प्राणास्ततो नृपः। अग्निना योजयामास वृद्धौ च ऋषिपुत्रकम्॥७७॥
ततो जगाम नगरं दुःखितो नृपतिर्मुने। वसिष्ठाय च तत्सर्वं न्यवेदयदशेषतः॥७८॥
नृपाणां सूर्यवंश्यानां वसिष्ठो हि परा गतिः।
वसिष्ठोऽपि द्विजश्रेष्ठैः संमन्त्र्याऽऽह च निष्कृतिम्॥७९॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह कहते ही उन दम्पति के प्राण बहिर्गत् हो गये। राजा ने उन दम्पति का उनके पुत्र के सहित दाह-संस्कार सम्पन्न किया। हे मुनिवर! तब राजा दुःखी मन से नगर में वापस आये तथा उन्होंने महर्षि वसिष्ठ से समस्त वृत्तान्त कह दिया। सूर्यवंश के राजाओं की एकमात्र गति महर्षि वसिष्ठ ही थे। महर्षि ने भी अन्य ब्राह्मणों से मन्त्रणा करके इस पाप निवृत्ति का विधान किया।।७७-७९।।

वसिष्ठ उवाच

गालवं वामदेवं च जाबालिमथ कश्यपम्। एतानन्यान्समाहूय हयमेधाय यत्नतः॥८०॥
यजस्व हयमेधैश्च बहुभिर्बहुदक्षिणैः॥८१॥

ऋषि वसिष्ठ कहते हैं—अश्वमेध यज्ञानुष्ठानार्थ गालव, वामदेव, जाबालि तथा कश्यप को अन्य विशिष्ट ब्राह्मणों सहित बुलायें तथा प्रभूत दक्षिणान्वित एक उत्तम यज्ञ करिये।।८०-८१।।

ब्रह्मोवाच

अकरोद्धयमेधांश्च राजा दशरथो द्विजैः। एतस्मिन्नन्तरे तत्र वागुवाचाशरीरिणी॥८२॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब राजा दशरथ ने ब्राह्मणों के साथ अश्वमेध किया। उस समय वहां आकाशवाणी सुनाई पड़ी।।८२।।

आकाशवाण्युवाच

पूतं शरीरमभवद्राज्ञो दशरथस्य हि। व्यवहार्यश्च भविता भविष्यन्ति तथा सुताः।
ज्येष्ठपुत्रप्रसादेन राजाऽपापो भविष्यति॥८३॥

आकाशवाणी ने कहा—राजा दशरथ का शरीर पवित्र हो गया। अब इनके साथ सामाजिक व्यवहार विहित है। अब इनको पुत्रोत्पत्ति होगी, जिसमें ज्येष्ठपुत्र के पुण्य प्रासाद से राजा पूर्ण निष्पाप होंगे।।८३।।

ब्रह्मोवाच

ततो बहुतिथे काले ऋष्यशृङ्गान्मुनीश्वरात्। देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं सुता आसन्सुरोपमाः॥८४॥
कौशल्यायां तथा रामः सुमित्रायां च लक्ष्मणः। शत्रुघ्नश्चापि कैकेय्यां भरतो मतिमत्तरः॥८५॥
ते सर्वे मतिमन्तश्च प्रिया राज्ञो वशे स्थिताः। तं राजानमृषिः प्राप्य विश्वामित्रः प्रजापतिः॥८६॥
रामं च लक्ष्मणं चापि अयाचत महामते। यज्ञसंरक्षणार्थाय ज्ञाततन्महिमा मुनिः॥८७॥
चिरप्राप्तसुतो वृद्धो राजा नैवेत्यभाषत॥८८॥

ब्रह्मा कहते हैं—तत्पश्चात् दीर्घकाल व्यतीत होने पर ऋष्यशृङ्ग ऋषि की कृपा से तथा देवकार्य सिद्धि हेतु दशरथ को चार देवोपम पुत्र जन्मे। कौशल्या से राम, सुमित्रा से लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न और कैकेयी से भरत ने जन्म लिया। वे सभी राजा के प्रिय तथा वश में रहते थे। एक बार ऋषि विश्वामित्र मुनि ने राम की तथा लक्ष्मण की महिमा से अवगत होकर अपने यज्ञ की रक्षा हेतु आकर दशरथ से प्रार्थना किया कि मेरे साथ यज्ञरक्षार्थ राम-लक्ष्मण को भेजिये। परन्तु राजा ने वृद्धावस्था में पुत्रलाभ किया था, अतः स्नेहाधिक्य के कारण वे असहमत हो गये।।८४-८८।।

राजोवाच

महता दैवयोगेन कथंचिद्वार्धके मुने। जातावानन्दसंदोहदायकौ मम बालकौ।।८९।।
सशरीरमिदं राज्यं दास्ये नैव सुताविमौ।।९०।।

राजा दशरथ कहते हैं—हे मुनिवर! महान् भाग्ययोग से वृद्धावस्था में किसी प्रकार आनन्द-सन्दोहप्रद ये बालक जन्मे हैं। मैं अपना शरीर तथा राज्य दे सकता हूं, किन्तु इन दो पुत्रों को नहीं दे सकूंगा।।८९-९०।।

ब्रह्मोवाच

वसिष्ठेन तदा प्रोक्तो राजा दशरथस्त्विति।।९१।।

ब्रह्मा कहते हैं—तब वसिष्ठ मुनि ने राजा से कहा—।।९१।।

वसिष्ठ उवाच

रघवः प्रार्थनाभङ्गं न राजन्क्वापि शिक्षिताः।।९२।।

वसिष्ठ कहते हैं—हे राजन्! रघुवंशी राजाओं ने कभी भी प्रार्थना भंग की शिक्षा ग्रहण नहीं किया।।९२।।

ब्रह्मोवाच

रामं च लक्ष्मणं चैव कथञ्चिदवदन्नृपः।।९३।।

ब्रह्मा कहते हैं—तब राजा दशरथ ने अतीव कष्ट के साथ राम-लक्ष्मण से कहा—।।९३।।

राजोवाच

विश्वामित्रस्य ब्रह्मर्षे कुरुतां (तं) यज्ञरक्षणम्।।९४।।

राजा दशरथ कहते हैं—तुम लोग ब्रह्मर्षि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करो।।९४।।

ब्रह्मोवाच

वदन्निति सुतौ सोष्णं निश्वसन् ग्लपिताधरः।
पुत्रौ समर्पयामास विश्वामित्रस्य शास्त्रकृत्।।९५।।
तथेत्युक्त्वा दशरथं नमस्य च पुनः पुनः। जग्मतू रक्षणार्थाय विश्वामित्रेण तौ मुदा।।९६।।
ततः प्रहृष्टः स मुनिर्मुदा प्रादात्तदोभयोः। माहेश्वरीं महाविद्यां धनुर्विद्यापुरःसराम्।।९७।।

शास्त्रीमास्त्रीं लौकिकीं च रथविद्यां गजोद्भवाम्।
अश्वविद्यां गदाविद्यां मन्त्राह्वानविसर्जने॥९८॥

ब्रह्मा कहते हैं—उस समय शास्त्रज्ञ राजा ने गर्म श्वास छोड़ते हुये कम्पित अधरों से यह कह कर दोनों पुत्रों को विश्वामित्र के हाथों सौंप दिया। इससे प्रसन्न होकर मुनि विश्वामित्र ने दोनों बालकों को धनुर्विद्या के साथ माहेश्वरी महाविद्या, आह्वान-विसर्जन मन्त्रमयी शस्त्रविद्या, अस्त्रविद्या, लौकिकी विद्या, रथ-विद्या, हस्ति-अश्व विद्या एवं गदाविद्या प्रदान किया।।९५-९८।।

सर्वविद्यामथावाप्य उभौ तौ रामलक्ष्मणौ। वनौकसां हितार्थाय जघ्नतुस्ताटकां वने॥९९॥

तब राम-लक्ष्मण ने इन सब विद्या को गुरु विश्वामित्र से पाकर यज्ञरक्षार्थ तथा वनवासी मुनिगण के हितार्थ वन में ताड़का का वध कर दिया।।९९।।

अहल्यां शापनिर्मुक्तां पादस्पर्शाच्च चक्रतुः।
यज्ञविध्वंसनायातांञ्जघ्नतुस्तत्र राक्षसान्॥१००॥
कृतविद्यौ धनुष्पाणी चक्रतुर्यज्ञरक्षणम्। ततो महामखे वृत्ते विश्वामित्रो मुनीश्वरः॥१०१॥

तत्पश्चात् उन्होंने मार्ग में पाषाणरूपधारी अहल्या को चरण स्पर्श मात्र से शापमुक्त कर दिया तथा यज्ञस्थल में जाकर विद्यायुक्त दोनों भाईयों ने यज्ञ में विघ्न करने आये राक्षसों का वध करके विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा किया।।१००-१०१।।

पुत्राभ्यां सहितो राज्ञो जनकं द्रष्टुमभ्यगात्। चित्रामदर्शयत्तत्र राजमध्ये नृपात्मजः॥१०२॥
रामः सौमित्रिसहितो धनुर्विद्यां गुरोर्मताम्।
तत्प्रीतो जनकः प्रादात्सीतां लक्ष्मीमयोनिजाम्॥१०३॥
तथैव लक्ष्मणस्यापि भरतस्यानुजस्य च। शत्रुघ्नभरतादीनां वसिष्ठादिमते स्थितः॥१०४॥
राजा दशरथः श्रीमान्विवाहमकरोन्मुने। ततो बहुतिथे काले राज्यं तस्य प्रयच्छति॥१०५॥
नृपतौ सर्वलोकानामनुमत्या गुरोरपि। मन्थरात्मकदुर्दैवप्रेरिता मत्सराकुला॥१०६॥

उन धनुर्धर भ्रातागण ने यज्ञ की रक्षा किया। जब सविधि यज्ञ सम्पन्न हो गया, तब वे महामुनि विश्वामित्र राम-लक्ष्मण के साथ राजा जनक के दर्शनार्थ मिथिला गये। वहां राजमण्डली में राम तथा लक्ष्मण ने विचित्र धनुर्विद्या का प्रदर्शन किया। इससे राजा जनक ने प्रसन्न होकर राम को साक्षात् लक्ष्मीरूपा अयोनिजा सीता नामक कन्या प्रदान किया। राजा दशरथ ने वसिष्ठ आदि के मतानुरूप लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न का भी वहीं विवाह कर दिया। तत्पश्चात् दीर्घकालोपरान्त राजा ने समस्त प्रजा एवं गुरु के मतानुरूप राम को राज्य देने का निश्चय किया, तथापि दैव प्रेरणा से उस समय कैकेयी ईर्ष्या ग्रस्त हो गई।।१०२-१०६।।

कैकेयी विघ्नमातस्थे वनप्रव्राजनं तथा।
भरतस्य च तद्राज्यं राजा नैव च दत्तवान्॥१०७॥
पितरं सत्यवाक्यं तं कुर्वन्नामो महावनम्।
विवेश सीतया सार्धं तथा सौमित्रिणा सह॥१०८॥

सतां च मानसं शुद्धं स विवेश स्वकैर्गुणः।
तस्मिन्विनिर्गते रामे वनवासाय दीक्षिते॥१०९॥
समं लक्ष्मणसीताभ्यां राज्यतृष्णाविवर्जिते।
तं रामं चापि सोमित्रिं सीतां च गुणशालिनीम्॥११०॥
दुःखेन महताऽऽविष्टो ब्रह्मशापं च संस्मरन्।
तदा दशरथो राजा प्राणांस्तत्याज दुःखितः॥१११॥
कृतकर्मविपाकेन राजा नीतो यमानुगैः। तस्मै राज्ञे महाप्राज्ञ यावत्स्थावरजङ्गमे॥११२॥
यमसद्मन्यनेकानि तामिस्त्रादीनि नारद। नरकाण्यथ घोराणि भीषणानि बहूनि च॥११३॥
तत्र क्षिप्तस्तदा राजा नरकेषु पृथक्पृथक्।
पच्यते छिद्यते राजा पिष्यते चूर्ण्यते तथा॥११४॥
शोष्यते दश्यते भूयो दह्यते च निमज्ज्यते। एवमादिषु घोरेषु नरकेषू च पच्यते॥११५॥

तब कैकेयी ने इस कार्य में अवरोध उत्पन्न करते हुये राजा से वर मांगा कि राम वन जायें तथा राज्य भरत को मिले। तथापि राजा ने ऐसा नहीं किया। पितृभक्त राम इससे सहमत नहीं थे। उन्होंने पिता के प्रण को सत्य करने हेतु सीता तथा सौमित्र लक्ष्मण के साथ वनगमन किया। एवंविध श्रीराम अपने उन्नत गुणों के कारण सज्जनों के पवित्र मन में बस गये। राज्यलोभ से पूर्णतः रहित रामचन्द्र वनवास हेतु दृढ़ चित्त होकर सीता-लक्ष्मण के साथ निकल पड़े। उधर राजा दशरथ महादुःखी होकर राम-लक्ष्मण तथा गुणमयी सीता एवं ब्राह्मण के शाप के विषय में चिन्तन करते-करते दुःख के आवेग के कारण स्वर्गवासी हो गये। उनको उनके कृत कर्म के विपाक के कारण यमदूत यमलोक ले गये। वहां घोराकृति, भयप्रद, तामिस्र आदि अनेक नरक हैं। हे नारद! राजा को उनमें पृथक्-पृथक् क्रमशः छोड़ा गया था। उनको अग्निदग्ध किया गया, यन्त्रों में पीस कर चूर्ण किया गया। शोषित किया गया, काट कर पुनः जलाया गया। तदनन्तर जलाप्लुत किया गया। इस प्रकार अनेक घोरतर नरकों में उनको यंत्रणाग्रस्त किया गया।।१०७-११५।।

रामोऽपि गच्छन्नध्वानं चित्रकूटमथागतम्।
तत्रैव त्रीणि वर्षाणि व्यतीतानि महामते॥११६॥
पुनः स दक्षिणामाशामाक्रमद्दण्डकं वनम्।
विख्यातं त्रिशु लोकेषु देशानां तद्धि पुण्यदम्॥११७॥
प्राविशत्तन्महारण्यं भीषणं दैत्यसेवितम्।
तद्भयादृषिभिस्त्यक्तं हत्वा दैत्यांस्तु राक्षसान्॥११८॥
विचरन्दण्डकारण्ये ऋषिसेव्यमथाकरोत्। तत्रेदं वृत्तमाख्यास्ये शृणु नारद यत्नतः॥११९॥
तावच्छनैस्त्वगाद्ग्रामो यावद्योजनपञ्चकम्।
गौतमीं समनुप्राप्तो राजाऽपि नरके स्थितः॥१२०॥

यमः स्वकिंकरानाह रामो दशरथात्मजः।
गौतमीमभितो याति पितरं तस्य धीमतः॥१२१॥
आकर्षन्त्वथ राजानं नरकान्नात्र संशयः। उत्तीर्य गौतमीं यास्ति यावद्योजनपञ्चकम्॥१२२॥
रामस्तावत्तस्य पिता नरके नैव पच्यताम्। यदेतन्मद्वचः पुण्यं न कुर्युर्यदि दूतकाः॥१२३॥
ततश्च नरके घोरे यूयं सर्वे निमज्जथ।
या काऽप्युक्ता परा शक्तिः शिवस्य समवायिनी॥१२४॥
तामेव गौतमीं सन्तो वदन्त्यम्भःस्वरूपिणीम्।
हरिब्रह्ममहेशानां मान्या वन्द्या च सैव यत्॥१२५॥
निस्तीर्यते न केनापि तदतिक्रमजं त्वघम्।
पापिनोऽप्यात्मजः कश्चिद्यश्च (स्य) गङ्गामनुस्मरेत्॥१२६॥
सोऽनेकदुर्गनिरयान्निर्गतो मुक्ततां व्रजेत्। किं पुनस्तादृशः पुत्रो गौतमीनिकटे स्थितः॥१२७॥
यस्यासौ नरके पक्तुं न कैरपि हि शक्यते।
दक्षिणाशापतेर्वाक्यं निशम्य यमकिंकराः॥१२८॥
नरके पच्यमानं तमयोध्याधिपतिं नृपम्। उत्तार्य घोरनरकाद्वचनं चेदमब्रुवन्॥१२९॥

इधर रामचन्द्र भी चलते-चलते चित्रकूट पहुंचे। हे महामति! वहां उन्होंने तीन वर्ष व्यतीत किया। तदनन्तर वे लोकप्रसिद्ध दण्डक वन पहुंचे। वह त्रैलोक्य प्रसिद्ध तथा अत्यधिक पुण्यप्रद था। उस दैत्यराक्षस समन्वित महावन में वे उन दुरात्मागण का वध करते विचरते थे। वह वन तब दैत्यों तथा राक्षसों के भय से ऋषियों ने छोड़ रखा था। वह पुनः अब उन ऋषिगण के निवास योग्य हो गया। हे नारद! वहां की एक घटना यत्नतः श्रवण करो। इसी प्रकार राम इसी तरह पांच योजन पार करते हुये एक बार गौतमी नदी तक पहुंचे। इधर राजा दशरथ भी नरक में पड़े थे। तब यम ने अपने गणों से कहा कि "राजा दशरथ के पुत्र राम गौतमी नदी की ओर जा रहे हैं। जब तक वे पांच योजन पार करके गौतमी तक नहीं पहुंचते, उससे पहले ही तुम लोग धीमान् दशरथ को नरक से निकालो। अब उनको नरक में रखना उचित नहीं है। इसमें तुम लोग अब कोई दुविधा मत करना। मेरा जो यह पुण्य आदेश है, यदि इसका पालन नहीं करोगे, तब तुम लोग भी नरक में जा पड़ोगे। शिवस्वरूप ईश्वर की जो एक नित्या पराशक्ति हैं, साधुगण उनको ही जलाकार में परिणता गौतमीरूपा कहते हैं। यह नदी हरि-हर तथा ब्रह्मा द्वारा भी वन्दनीया एवं मान्या है। अतः इनकी अवज्ञाजनित दोषराशि से कोई बच नहीं सकेगा। किसी कितने पापी मानव का चाहे जैसा पुत्र क्यों न हो, यदि वह गौतमीगंगा का स्मरण करे, तब वह अथवा उसके पिता चाहे कैसे दुर्गम नरक में क्यों न पड़े हों, वहां से छूट जाते हैं। तब जिनका राम के समान पुत्र गौतमी जा रहे हों, उस पिता को नरक में रोके रहने की शक्ति किसी में नहीं है। दक्षिण दिक् के अधिपति प्रभु यम का आदेश सुनकर यमदूतों ने नरकपतित अयोध्यापति को घोर नरकों से बहिर्गत् करके कहा—॥११६-१२९॥

यमकिंकरा ऊचुः

धन्योऽसि नृपशार्दूल यस्य पुत्रः स तादृशः।
इह चामुत्र विश्रान्तिः सुपुत्रः केन लभ्यते॥१३०॥

यमदूतगण कहते हैं—हे राजन्! जिसके राम ऐसे पुत्र हैं, वे आप धन्य हैं। इहलोक तथा परलोक दोनों में विश्रान्ति साधन करने वाला सुपुत्र किसे मिलता है?।।१३०।।

ब्रह्मोवाच

स विश्रान्तः शनै राजा किंकरान्वाक्यमब्रवीत्॥१३१॥

ब्रह्मा कहते हैं—शनैः-शनैः विश्रान्त होकर राजा ने यमदूतगण से कहा—॥१३१॥

राजोवाच

नरकेष्वथ घोरेषु पच्यमानः पुनः पुनः। कथं त्वाकर्षितः शीघ्रं तन्मे वक्तुमिहार्हथ॥१३२॥

राजा कहते हैं—मैं बारम्बार नरक यातना सहने को विवश हो रहा था। तुम लोगों के द्वारा मैं कैसे मुक्त किया गया? शीघ्र कहो।।१३२।।

ब्रह्मोवाच

तत्र कश्चिच्छान्तमना राजानमिदमब्रवीत्॥१३३॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब किसी शान्त मन वाले यमदूत ने राजा से कहा—॥१३३॥

यमदूत उवाच

वेदशास्त्रपुराणादावेतद्गोप्यं प्रयत्नतः। प्रकाश्यते तदपि ते सामर्थ्यं पुत्रतीर्थयोः॥१३४॥
रामस्तव सुतः श्रीमान्गौतमीतीरमागतः। तस्मात्त्वं नरकाद्घोरादाकृष्टोऽसि नरोत्तम॥१३५॥
यदि त्वां तत्र गौतम्यां स्मरेद्रामः सलक्ष्मणः।
स्नानं कृत्वाऽथ पिण्डादि ते दद्यात्स नृपोत्तम।
ततस्त्वंतं सर्वपापेभ्यो मुक्तो यासि त्रिविष्टपम्॥१३६॥

यमदूत कहता है—यद्यपि वेद-पुराण तथा शास्त्रों में यह तत्व गुप्त है, तथापि मैं आपके पुत्र तथा तीर्थ का सामर्थ्य व्यक्त करता हूं। हे नरोत्तम! आपके पुत्र श्रीराम गौमतीतट पर आये हैं। इसी कारण आपको घोर नरक से छुटकारा मिल गया। हे नरोत्तम! यदि राम-लक्ष्मण के साथ इस गौमती में आपका स्मरण करके स्नान एवं पिण्ड आदि प्रदान करेंगे, तब आप सर्वपाप रहित होकर स्वर्ग गमन करेंगे।।१३४-१३६।।

राजोवाच

तत्र गत्वा भवद्वाक्यमाख्यास्ये स्वसुतौ प्रति। भवन्त एव शरणमनुज्ञां दातुमर्हथ॥१३७॥

राजा कहते हैं—मैं आपका शरणागत हूं। आप आज्ञा दीजिये। मैं वहां जाकर आपका वाक्य अपने पुत्रद्वय से कह सकूं।।१३७।।

ब्रह्मोवाच

तद्राजवचनं श्रुत्वा कृपया यमकिंकराः। आज्ञां च प्रददुस्तस्मै राजा प्रागात्सुतौ प्रति॥१३८॥
भीषणं यातनादेहमापन्नो निःश्वसन्मुहुः। निरीक्ष्य स्वयं लज्जमानः कृतं कर्म च संस्मरन्॥१३९॥
स्वेच्छया विहरन्गङ्गामाससाद च राघवः।
गौतम्यास्तटमाश्रित्य रामो लक्ष्मण एव च॥१४०॥
सीतया सह वैदेह्या सस्नौ चैव यथाविधि। नैव तत्राभवद्भोज्यं भक्ष्यं वा गौतमीतटे॥१४१॥
तद्दिने तत्र वसतां गौतमीतीरवासिनाम्। तद्दृष्ट्वा दुःखितो भ्राता लक्ष्मणो राममब्रवीत्॥१४२॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजा का वाक्य सुनकर यमदूतगणों ने उनको जाने की अनुमति उन पर कृपा करके प्रदान कर दिया। राजा का वह यातना देह भयानक था। वह दीर्घ निःश्वास ले रहा था। वह देह पूर्ववत् कर्मों को याद करके तथा अपनी इस दशा से लज्जित था। अन्ततः उस यातना देह के साथ राजा की जीवात्मा ने वहां से प्रस्थान किया। इधर राम, लक्ष्मण, वैदेही सीता सहित घूमते-फिरते गौमतीगंगा के पास आये। वहां उन सब ने सविधि स्नान किया। दैवात् उस दिन गौमती तट निवासियों के पास तनिक भी आहार नहीं था। यह देखकर दुःखी लक्ष्मण ने भाई राम से कहा—॥१३८-१४२॥

लक्ष्मण उवाच

पुत्रौ दशरथस्याऽऽवां तवापि बलमीदृशम्।
नास्ति भोज्यमथास्माकं गङ्गातीरनिवासिनाम्॥१४३॥

लक्ष्मण कहते हैं—हम उभय ही राजा दशरथ की सन्तान हैं। आप ऐसे बली हैं। तथापि इन गौमतीगंगा के तट पर रहने वालों के पास खाद्य द्रव्य नहीं है। हमारे रहते ऐसा हो रहा है॥१४३॥

राम उवाच

भ्रातर्यद्विहितं कर्म नैव तच्चान्यथा भवेत्। पृथिव्यामन्नपूर्णायां वयमन्नाभिलाषिणः॥१४४॥
सौमित्रे नूनमस्माभिर्न ब्राह्मणमुखे हुतम्।
अवज्ञया महीदेवांस्तर्पयन्त्यर्चयन्ति न॥१४५॥
ते ये लक्ष्मण जायन्ते सर्वदैव बुभुक्षिताः।
स्नात्वा देवानथाभ्यर्च्य होतव्यश्च हुताशनः।
ततः स्वसमये देवो विधास्यत्यशनं तु नौ॥१४६॥

राम कहते हैं—हे भाई! जो कृत कर्म हैं, वे विधि के विधान के अन्तर्गत् हैं। वे अन्यथा नहीं होते। इस शस्यपूर्ण पृथिवी पर हम अन्नार्थ चिन्तित हैं। निश्चित रूप से हमने ब्राह्मणों के मुख में अन्न नहीं दिया है। जो ब्राह्मणों की अवज्ञा करके उनकी अर्चना नहीं करते, उनको तृप्त नहीं करते, वे सर्वदा भूखे रहते हैं। स्नानोपरान्त देवार्चन तथा अग्नि में होम अवश्य करे। इससे योग्य काल में पितृगण देवगण हमारे लिये अवश्य खाद्य विधान करेंगे॥१४४-१४६॥

ब्रह्मोवाच

भ्रात्रोः संजल्पतोरेवं पश्यतोः कर्मणो गतिम्। शनैर्दशरथो राजा तं देशमुपजग्मिवान्॥१४७॥
तं दृष्ट्वा लक्ष्मणः शीघ्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।
धनुराकृष्य कोपेन रक्षस्त्वं दानवोऽथवा॥१४८॥
आसन्नं च पुनर्दृष्ट्वा याहि यात्द्य (ह्य) त्र पुण्यभाक्।
रामो दाशरथी राजा धर्मभाक्पश्य पर्वते॥१४९॥
गुरुभक्तः सत्यसंधो देवब्राह्मणसेवकः। त्रैलोक्यरक्षादक्षोऽसौ वर्तते यत्र राघवः॥१५०॥
न तत्र त्वादृशामस्ति प्रवेशः पापकर्मणाम्। यदि प्रविशसे पाप ततो वधमवाप्स्यसि॥१५१॥

ब्रह्मा कहते हैं—जब ये दोनों भाई आपस में वार्त्ता तथा कर्म की गहन गति का वर्णन कर रहे थे, तभी राजा दशरथ वहां धीरे से आ गये। लक्ष्मण ने उनकी विकट आकृति देख कर क्रोध से धनुष खींचा और कहा—"रुको! तुम राक्षस अथवा दानव जो कोई हो, रुक जाओ।" तथापि दशरथ आगे बढ़ते ही रहे। तब लक्ष्मण ने उनको भयंकर रूप में निकट आते देख कर कहा—"देखो, यहां धर्मात्मा पुण्यकर्त्ता राजा राम हैं। यहां गुरुभक्त, सत्य प्रतिज्ञा वाले, देवता एवं ब्राह्मणों की सेवा करने वाले, त्रैलोक्य रक्षा तत्पर राम का निवास है। यहां तुम्हारे समान पापी का प्रवेश वर्जित है। प्रवेश करते ही मैं वध कर दूंगा।।१४७-१५१।।

तत्पुत्रवचनं श्रुत्वा शनैराहूय वाचया।
उवाचाधोमुखो भूत्वा स्नुषां पुत्रौ कृताञ्जलिः।
मुहुरन्तर्विनिध्यायन्गतिं दुष्कृतकर्मणः॥१५२॥

अपने पुत्र का यह वचन सुनकर राजा मन ही मन अपने दुष्कर्म पर शोक करते हुये दोनों पुत्रों तथा पुत्रवधू से मन्द स्वर में अधोमुख होकर कहने लगे।।१५२।।

राजोवाच

अहं दशरथो राजा पुत्रौ मे शृणुतं वचः। तिसृभिर्ब्रह्महत्याभिर्वृतोऽहं दुःखभागतः।
छिन्नं पश्यत मे देहं नरकेषु च पातितम्॥१५३॥

राजा दशरथ कहते हैं—मैं राजा दशरथ हूं। हे पुत्रों! मेरा वचन सुनो। मैं तीन ब्रह्महत्याओं के पाप से घिर कर अतीव दुःखी हूं। मेरी देह छिन्न है। मैं नरक में पड़ा हूं।।१५३।।

ब्रह्मोवाच

ततः कृताञ्जली रामः सीतया लक्ष्मणेन च।
भूमौ प्रणेमुस्ते सर्वे वचनं चैतदब्रुवन्॥१५४॥

ब्रह्मा कहते हैं—तदनन्तर सीता, राम एवं लक्ष्मण ने उनको हाथ जोड़ा तथा भूमि पर लेट कर साष्टांग प्रणाम किया! तदनन्तर वे लोग कहने लगे।।१५४।।

सीतारामलक्ष्मणा ऊचुः

कस्येदं कर्मणस्तात फलं नृपतिसत्तम॥१५५॥

सीता-राम-लक्ष्मण कहते हैं—हे नृपश्रेष्ठ! यह आपके किस कर्म का फल है?॥१५५॥

ब्रह्मोवाच

स च प्राह यथावृत्तं ब्रह्महत्यात्रयं तथा॥१५६॥

ब्रह्मा ने कहा—तब महान् दुःख से आवृत राजा ने कहा कि यह तीन ब्रह्महत्या का दुष्परिणाम है॥१५६॥

राजोवाच

निष्कृतिर्ब्रह्महन्तृणां पुत्रौ क्वापि न विद्यते॥१५७॥

राजा कहते हैं—हे पुत्रगण! ब्रह्महत्यारे के पाप का छुटकारा कहीं नहीं है॥१५७॥

ब्रह्मोवाच

ततो दुःखेन महताऽऽवृताः सर्वे भुवं गताः। राजानं वनवासं च मातरं पितरं तथा॥१५८॥
दुःखागमं कर्मगतिं नरके पातनं तथा। एवमाद्यथ संस्मृत्य मुमोह नृपते सुतः।
विसंज्ञं नृपतिं दृष्ट्वा सीता वाक्यमथाब्रवीत्॥१५९॥

यह सुनकर महान् दुःखावेग से ये दोनों सन्तान तथा पुत्रवधू मूर्च्छित होकर भूपतित हो गये। तब राम भी राजा की स्थिति, अपना वनवास, माता-पिता के महत् दुःख, कर्म की भीषण गति तथा पिता का नरक गमन स्मरण करते संज्ञारहित हो गये। उनकी हालत देख कर सीता कहने लगीं॥१५८-१५९॥

सीतोवाच

न शोचन्ति महात्मानस्त्वादृशा व्यसनागमे।
चिन्तयन्ति प्रतीकारं दैत्यमप्यथ मानुषम्॥१६०॥
शोचद्भिर्युगसाहस्रं विपत्तिर्नैव तीर्यते।
व्यामोहमाप्नुवन्तीह न कदाचिद्विचक्षणाः॥१६१॥
किमनेनात्र दुःखेन निष्फलेन जनेश्वर। देहि हत्यां प्रथमतो या जाता ह्यतिभीषणा॥१६२॥
पितृभक्तः पुण्यशीलो वेदवेदाङ्गपारगः। अनागा यो हतो विप्रस्तत्पापस्यात्र निष्कृतिम्॥१६३॥
आचरामि यथाशास्त्रं मा शोकं कुरुतं युवाम्।
द्वितीयां लक्ष्मणो हत्यां गृह्णातु त्वपरां भवान्॥१६४॥

सीता कहती हैं—आप ऐसे महात्मागण आपत्तिजनित दुःख शोक नहीं करते। विपत्ति दैवकृत हो अथवा मनुष्य द्वारा कृत हो, उसका प्रतिकार सोचना चाहिये। सहस्र युगों तक शोक करने से भी विपत्ति से छुटकारा नहीं होता। विचक्षण लोग कभी इससे मोहग्रस्त नहीं होते। हे राजन्! इस समय निष्फल दुःख

निप्रयोज्य है। आप ब्रह्महत्या पातक मुझे दे दीजिये। पितृभक्त, पुण्यात्मा, वेदवेदांग ज्ञाता जो ब्राह्मण बिना अपराध मारा गया, वह पाप मुझे दीजिये। द्वितीय ब्रह्महत्या को लक्ष्मण ग्रहण करे। तीसरी ब्रह्महत्या आप ले लीजिये।।१६०-१६४।।

ब्रह्मोवाच

एतद्धर्मयुतं वाक्यं सीतया भाषितं दृढम्।
तथेति चाऽऽहतुरुभौ ततो दशरथोऽब्रवीत्।।१६५।।

ब्रह्मा कहते हैं—सीता कथित इस धर्मसमन्वित दृढ़ वचन को सुनकर राम-लक्ष्मण ने कहा—"ऐसा ही हो।" यह सुनकर राजा दशरथ कहने लगे।।१६५।।

दशरथ उवाच

त्वं हि ब्रह्मविदः कन्या जनकस्य त्वयोनिजा। भार्या रामस्य किं चित्रं यद्युक्तमनुभाषसे।।१६६।।
न कोऽपि भवतां किंतु श्रमः स्वल्पोऽपि विद्यते।
गौतम्यां स्नानदानेन पिण्डनिर्वपणेन च।।१६७।।
तिसृभिर्ब्रह्महत्याभिर्मुक्तो यामि त्रिविष्टपम्।
त्वया जनकसंभूते स्वकुलोचितमीरितम्।।१६८।।
प्रापयन्ति परं पारं भवाब्धेः कुलयोषितः।
गोदावर्याः प्रसादेन किं नामास्त्यत्र दुर्लभम्।।१६९।।

राजा दशरथ कहते हैं—तुम ब्रह्मज्ञ जनक की कन्या हो, विशेषतः अयोनिसंभवा हो, ऊपर से राम की पत्नी हो। अतः तुमने जो यह युक्तिमय बात कहा, इसमें क्या आश्चर्य? लेकिन इस कार्य में तुम लोगों को तनिक भी श्रम नहीं करना है। गौतमी में स्नान-दान तथा पिण्ड प्रदान करने से ही मैं ब्रह्महत्या पातक से मुक्त होकर स्वर्ग चला जाऊंगा। हे जनकनन्दिनी! तुमने अपने कुल के अनुरूप ही सब कहा है। कुल नारीगण संसाररूपी नदी को पार करा देती हैं। गौमती की कृपा से इस संसार में क्या बाकी रह कर अप्राप्त रहता है?।।१६६-१६९।।

ब्रह्मोवाच

तथेति क्रियमाणे तु पिण्डदानाय शत्रुहा।
नैवापश्यद्भक्ष्यभोज्यं ततो लक्ष्मणमब्रवीत्।।१७०।।
लक्ष्मणः प्राह विनयादिङ्गुद्याश्च फलानि च।
सन्ति तेषां च पिण्याकमानीतं तत्क्षणादिव।।१७१।।
पिण्याकेनाथ गङ्गायां पिण्डं दातुं तथा पितुः।
मनः कुर्वंस्ततो रामो मन्दोऽभूद्दुःखितस्तदा।।१७२।।

दैवी वागभवत्तत्र दुःखं त्यज नृपात्मज।
राज्यभ्रष्टो वनं प्राप्तं किं वै निष्किञ्चनो भवान्॥१७३॥
अशठो धर्मनिरतो न शोचितुमिहार्हसि।
वित्तशाठ्येन यो धर्मं करोति स तु पातकी॥१७४॥
श्रूयते सर्वशास्त्रेषु यद्राम शृणु यत्नतः। यदन्नः पुरुषो राजंस्तदन्नास्तस्य देवताः॥१७५॥

ब्रह्मा कहते हैं—शत्रुहन्ता राम पिता के आदेशानुरूप जब पिण्ड देने हेतु उद्यत हो गये, तब राम को पिण्ड प्रदानार्थ कोई भी भक्ष्य-भोज्य पदार्थ नहीं मिला, उन्होंने तब लक्ष्मण से कहा। लक्ष्मण ने सविनय कहा—"इंगूदी के फल हैं।" उन्होंने तत्काल इंगुदी को पीस कर आटा ला दिया। राम ने जब इंगुदी चूर्ण से पिता को पिण्ड देना चाहा, तब वे कुछ दुःखी से हो गये। तभी आकाशवाणी श्रुतिगोचर हो गई—"हे राजपुत्र! शोक त्यागो। अभी तुम राज्य रहित एवं द्रव्य से भी रहित हो। तुम धर्मात्मा एवं उदार हो। शोक मत करो। जो धनी होकर भी कंजूसी से धर्मकृत्य करता है, वह पातकी है। हे राम! धर्मशास्त्र का वचन एकाग्रता से श्रवण करो। हे राजन्! जैसा अन्न पुरुष को मिलता है अथवा भक्षण करता है, उस व्यक्ति के देवगण भी वही चाहते हैं तथा वे उसी के पात्र होते हैं॥१७०-१७५॥

पिण्डे निपतिते भूमौ नापश्यत्पितरं तदा। शवं च पतितं यत्र शवतीर्थमनुत्तमम्॥१७६॥
महापातकसंघातविघातकृदनुस्मृतिः। तत्राऽऽगच्छँल्लोकपाला रुद्रादित्यास्तथाऽश्विनौ॥१७७॥
स्वं स्वं विमानमारूढास्तेषां मध्येऽतिदीप्तिमान्।
विमानवरमारूढः स्तूयमानश्च किन्नरैः॥१७८॥
आदित्यसदृशाकारस्तेषां मध्ये बभौ पिता।
तमदृष्ट्वा स्वपितरं देवान्दृष्ट्वा विमानिनः॥१७९॥
कृताञ्जलिपुटो रामः पिता मे क्वेत्यभाषत।
इति (ततो) दिव्याऽभवद्वाणी रामं संबोध्य सीतया॥१८०॥
तिसृभिर्ब्रह्महत्याभिर्मुक्तो दशरथो नृपः।
वृतं पश्य सुरैस्तात देवा अप्यूचिरे च तम्॥१८१॥

तदनन्तर जैसे ही राम ने श्राद्ध किया तथा पिण्ड भूतल पर छोड़ा, वे पुनः पिता को नहीं देख सके। परन्तु देखते हैं कि वहां पिता का शव ही है। वह स्थान अब शवतीर्थ हो गया। इसके स्मरण से ही महापातक तत्काल नष्ट हो जाते हैं। तत्पश्चात् वहां लोकपाल, रुद्र, आदित्यगण, दोनों अश्विनीकुमार पहुंचे। रामचन्द्र देखते हैं कि उनके पिता अतीव दीप्तिमान देह से युक्त होकर देवताओं के विमानों के बीच एक विमान पर आसीन हैं। किन्नरगण उनकी स्तुति कर रहे हैं। देवगण के मध्य आदित्य के समान स्थित अपने पिता को राम पहचान नहीं सके। उन्होंने हाथ जोड़कर विमान पर बैठे देवगण से प्रश्न किया कि मेरे पिता कहां हैं? तभी सीता-राम को सम्बोधन करके आकाशवाणी ने कहा—"हे तात! राजा दशरथ तीनों ब्रह्महत्या से अब मुक्त हैं। इनको देवों से घिरा देखो।" तब उन राम से देवता कहने लगे॥१७६-१८१॥

देवा ऊचुः

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि राम स्वर्गं गतः पिता।
नानानिरयसङ्घातात्पूर्वजानुद्धरेत्तु यः॥१८२॥
स धन्योऽलंकृतं तेन कृतिना भुवनत्रयम्। एनं पश्य महाबाहो मुक्तपापं रविप्रभम्॥१८३॥
सर्वसंपत्तियुक्तोऽपि पापी दग्धद्रुमोपम। निष्किंचनोऽपि सुकृतीं दृश्यते चन्द्रमौलिवत्॥१८४॥

देवता कहते हैं—हे राम! तुम कृतार्थ हो गये। तुम धन्य हो। तुम्हारे पिता स्वर्ग गये। जो मानव पूर्वजों का उद्धार नरक से करता है, वह धन्य है। ऐसे कृती से तीनों लोक अलंकृत हो जाते हैं। इन सूर्य के समान पुरुष को देखो। पूर्व में यह सर्व सम्पदा युक्त होकर भी पापात्मा तथा दग्ध वृक्ष जैसे थे। अब यह सुकृती तथा शिव जैसे कान्तिमान् हो गये।।१८२-१८४।।

ब्रह्मोवाच

दृष्ट्वाब्रवीत्सुतं राजा आशीर्भिरभिनन्द्य च॥१८५॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब दशरथ ने पुत्र को आशीर्वाद देकर उनकी प्रशंसा करते कहा—॥१८५॥

राजोवाच

कृतकृत्योऽसि भद्रं ते तारितोऽहं त्वयाऽनघ।
धन्यः स पुत्रो लोकेऽस्मिन्पितॄणां यस्तु तारकः॥१८६॥

राजा कहते हैं—तुम कृतार्थ हो गये। तुम्हारा शुभ हो। हे निष्पाप! मैं तुम्हारे द्वारा तार दिया गया। लोक में वही पुत्र धन्य है, जो पिता-माता का त्राण करता है।।१८६।।

ब्रह्मोवाच

ततः सुरगणाः प्रोचुर्देवानां कार्यसिद्धये। रामं च पुरुषश्रेष्ठं गच्छ तात यथासुखम्।
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा रामस्तानब्रवीत्सुरान्॥१८७॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब देवगण ने अपनी कार्यसिद्धि हेतु पुरुषप्रवर राम से कहा—"तात! सुख पूर्वक जाओ।" तब राम ने उनसे पूछा।।१८७।।

राम उवाच

गुरौ पितरि मे देवाः किं कृत्यमवशिष्यते॥१८८॥

राम कहते हैं—हे देवताओं! सम्मानित पिता के सम्बन्ध में मुझे और क्या करना है?।।१८८।।

देवा ऊचुः

नदी न गङ्गया तुल्या न त्वया सदृशः सुतः।
न शिवेन समो देवो न तारेण समो मनुः॥१८९॥

त्वया राम गुरूणां च कार्यं सर्वमनुष्ठितम्।
तारिताः पितरो राम त्वया पुत्रेण मानद।
गच्छन्तु सर्वे स्वस्थानं त्वं च गच्छ यथासुखम्॥१९०॥

देवता कहते हैं—गंगा जैसी नदी, तुम्हारे समान पुत्र, शिव समान देवता और ओंकार के समान मन्त्र है ही नहीं। हे राम! तुमने पिता सम्बन्धित सर्व कार्य निष्पन्न कर दिया। पितरों का उद्धार सम्पन्न कर दिया। अब सब स्वस्थान गमन करें। तुम भी यथासुख प्रस्थान करो।।१८९-१९०।।

ब्रह्मोवाच

तद्देववचनाद्धृष्टः सीतया लक्ष्मणाग्रजः।
तद्दृष्ट्वा गङ्गामाहात्म्यं विस्मितो वाक्यमब्रवीत्॥१९१॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर सीता, लक्ष्मण तथा उनके अग्रज राम प्रसन्न हो गये। उन्होंने गौतमीगंगा की महान् महिमा देख कर कहा—।।१९१।।

राम उवाच

अहो गङ्गाप्रभावोऽयं त्रैलोक्ये नोपमीयते।
वयं धन्या यतो गङ्गा दृष्टाऽस्माभिस्त्रिपावनी॥१९२॥

राम कहते हैं—इस गंगा की तुलना त्रैलोक्य में कहीं नहीं हो सकती। हमारा जीवन धन्य है। हमने त्रिभुवन को पावन करने वाली इस नदी का दर्शन पा लिया।।१९२।।

ब्रह्मोवाच

हर्षेण महता युक्तो देवं स्थाप्य महेश्वरम्। तं षोडशभिरीशानमुपचारैः प्रयत्नतः॥१९३॥
संपूज्याऽऽवरणैर्युक्तं षट्त्रिंशत्कलमीश्वरम्।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा रामस्तुष्टाव शङ्करम्॥१९४॥

ब्रह्मा कहते हैं—वहां राम द्वारा आनन्द पूर्वक महेश्वर की स्थापना सम्पन्न की गयी। राम ने यत्नतः उनका १६ उपचारों से पूजन किया। ३६ कला वाले महेश्वराराधन एवं अर्चन सम्पन्न करने के अनन्तर राम उनकी स्तुति करबद्ध होकर करने लगे।।१९३-१९४।।

राम उवाच

नमामि शंभुं पुरुषं पुराणं, नमामि सर्वज्ञमपारभावम्।
नमामि रुद्रं प्रभुमक्षयं तं, नमामि शर्वं शिरसा नमामि॥१९५॥
नमामि देवं परमव्ययं तमुमापतिं लोकगुरुं नमामि।
नमामि दारिद्र्यविदारणं तं, नमामि रोगापहरं नमामि॥१९६॥
नमामि कल्याणमचिन्त्यरूपं, नमामि विश्वोद्भवबीजरूपम्।
नमामि विश्वस्थितिकारणं तं, नमामि संहारकरं नमामि॥१९७॥

नमामि गौरीप्रियमव्ययं तं, नमामि नित्यं क्षरमक्षरं तम्।
नमामि चिद्रूपममेयभावं, त्रिलोचनं तं शिरसा नमामि॥१९८॥
नमामि कारुण्यकरं भवस्य, भयंकरं वाऽपि सदा नमामि।
नमामि दातारमभीप्सितानां, नमामि सोमेशमुमेशमादौ॥१९९॥
नमामि वेदत्रयलोचनं तं, नमामि मूर्तित्रयवर्जितं तम्।
नमामि पुण्यं सदसद्व्यतीतं, नमामि तं पापहरं नमामि॥२००॥

राम कहते हैं—पुराणपुरुष शंभु को प्रणाम! मैं सर्वज्ञ, अपार भाव, अक्षय प्रभु रुद्र, सर्व को शिर नत करके प्रणाम करता हूं! मैं अव्यय परमदेव, लोकगुरु, उमापति, दरिद्रता विदारक, रोग हरण करने वाले, अचिन्त्य कल्याणरूप, विश्ववृक्ष के बीज, विश्वस्थिति हेतु, संहारकारण, अपक्षय रहित, गौरी प्रिय को प्रणाम करता हूं! क्षराक्षर, चिद्रूप, अमेयभाव, त्रिलोचन, संसार पर करुणा करने वाले, तथापि भयंकर शंकर को सदा प्रणाम! अभीप्सित सब कुछ देने वाले, सोमेश, उमेश, वेदत्रय नेत्र रूपी, मूर्त्तित्रय रहित, सद्-असत् से अतीत, पापहारी, हर को प्रणाम!॥१९५-२००॥

नमामि विश्वस्य हिते रतं तं, नमामि रूपाणि बहूनि धत्ते।
यो विश्वगोप्ता सदसत्प्रणेता, नमामि तं विश्वपतिं नमामि॥२०१॥
यज्ञेश्वरं संप्रति हव्यकव्यं, तथा गतिं लोकसदाशिवो यः।
आराधितो यश्च ददाति सर्वं, नमामि दानप्रियमिष्टदेवम्॥२०२॥
नमामि सोमेश्वरमस्वतन्त्रमुमापतिं तं विजयं नमामि।
नमामि विघ्नेश्वरनन्दिनाथं, पुत्रप्रियं तं शिरसा नमामि॥२०३॥
नमामि देवं भवदुःखशोकविनाशनं चन्द्रधरं नमामि।
नमामि गङ्गाधरमीशमीड्यमुमाधवं देववरं नमामि॥२०४॥
नमाम्यजादीशपुरंदरादिसुरासुरैरर्चितपादपद्मम् ।
नमामि देवीमुखवादनानामीक्षार्थमक्षित्रियं य ऐच्छत्॥२०५॥

आप विश्वहितरत, विश्वगोप्ता, सदा सत् प्रणेता, बहुरूपी, विश्वपति, यज्ञस्थरूप, हव्य-कव्य रूप, मेरी गति, लोकहितकारी शिव हैं। आपको प्रणाम! जो आराधित होकर सर्व ईप्सित प्रदान करते हैं, उन दानप्रिय इष्टदेव शर्व को प्रणाम! हे सोमेश्वर! अस्वतन्त्र (भक्ताधीन), उमापति, विजय, विघ्नेश्वर, नन्दिनाथ, पुत्रप्रेमी, संसार दुःख-शोक नाशक को शिर नत करके मेरा प्रणाम! चन्द्रधारी, पूज्य, गंगाधर, महादेव, देवप्रवर, उमापति को प्रणाम! जिनके चरणों की अर्चना विष्णु, ब्रह्मा, प्रभु इन्द्रादि देवता, राक्षस तक करते हैं, उनको प्रणाम! इन पर देवता को प्रणाम! जिन्होंने देवी के मुखाभिवादन काल में उनके दर्शनार्थ तीन नेत्र की कामना किया था, उन देवाधिदेव को प्रणाम! (एक बार गौरी जब शिवपूजा के अन्त में मुख, कक्ष तथा हथेली से वाद्य कर रही थीं, तब उन कुमारी को देखने की इच्छा से भगवान् की तृतीय नेत्रोत्पत्ति हो गई। देखें—देवी भागवत)॥२०१-२०५॥

पञ्चामृतैर्गन्धसुधूपदीपैर्विचित्रपुष्पैर्विविधैश्च मन्त्रैः।
अन्नप्रकारैः सकलोपचारैः, संपूजितं सोममहं नमामि॥२०६॥

पञ्चामृत, सुगन्धद्रव्य, धूप, दीप, नाना प्रकार के पुष्प, विविध मन्त्र, अनेक भोज्यों से जिनका पूजन होता है, उन सोम को प्रणाम करता हूं!॥२०६॥

ब्रह्मोवाच

ततः स भगवानाह रामं शंभुः सलक्ष्मणम्।
वरान्वृणीष्व भद्रं ते रामः प्राह वृषध्वजम्॥२०७॥

ब्रह्मा कहते हैं—राम के स्तव से सन्तुष्ट होकर प्रभु महेश्वर ने लक्ष्मण सहित राम से कहा—"वर ग्रहण करो। तुम सबका कल्याण हो।" तब राम ने कहा—॥२०७॥

राम उवाच

स्तोत्रेणानेन ये भक्त्या तोष्यन्ति त्वां सुरोत्तम।
तेषां सर्वाणि कार्याणि सिद्धिं यान्तु महेश्वर॥२०८॥
येषां च पितरः शम्भो पतिता नरकार्णवे।
तेषां पिण्डादिदानेन पूता यान्तु त्रिविष्टिपम्॥२०९॥
जन्मप्रभृति पापानि (यच्चापि) मनोवाक्कायिकं त्वघम्।
अत्र तु स्नानमात्रेण तत्सद्यो नाशमाप्नुयात्॥२१०॥
अत्र ये भक्तितः शम्भो ददत्यर्थिभ्य अण्वपि।
सर्वं तदक्षयं शम्भो दातृणां फलकृद्भवेत्॥२११॥

राम कहते हैं—हे सुरोत्तम! जो भक्ति पूर्वक इस स्तोत्र द्वारा भक्तिभाव से आपको सन्तुष्ट करें, हे महेश्वर! उनका सर्व कार्य सिद्ध हो जाये। हे शंभु! जिनके पितृगण नरक में पड़े हों, वह यहां यह पाठ करके यद्रि पिण्डदान करे, तब वे पितृगण पवित्र होकर त्रितापवर्जित स्वर्गगमन करें। यहां स्नान मात्र से ही मन-वाणी-काया से जन्मावधि कृत पापों का सद्यः नाश हो। हे प्रभो! यहां जो कोई अर्थीगण को यदि अणु प्रमाण भी दान करे, तब हे मंगलधाम! वह दाता के लिये अक्षय फलदायक हो जाये।।२०८-२११।।

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति तं रामं शङ्करो हृषितोऽब्रवीत्।
गते तस्मिन्सुरश्रेष्ठे रामोऽप्यनुचरैः सह॥२१२॥
गौतमी यत्र चोत्पन्ना शनैस्तं देशमभ्यगात्। ततः प्रभृति तत्तीर्थं रामतीर्थमुदाहृतम्॥२१३॥
दयालोरपतत्त (द्य) त्र लक्ष्मणस्य कराच्छरः। तद्बाणतीर्थमभवत्सर्वापद्विनिवारणम्॥२१४॥
यत्र सौमित्रिणा स्नानं शंकरस्यार्चनं कृतम्। तत्तीर्थं लक्ष्मणं जातं तथा सीतासमुद्भवम्॥२१५॥

नानाविधाशेषपापसङ्घनिर्मूलनक्षमम्। यदङ्घ्रिसङ्गादभवद्भङ्गा त्रैलोक्यपावनी॥२१६॥
स यत्र स्नानमकरोत्तद्वैशिष्ट्यं किमुच्यते। तद्रामतीर्थसदृशं तीर्थं क्वापि न विद्यते॥२१७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये रामतीर्थादितीर्थवर्णनं नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५४॥

ब्रह्मा कहते हैं—देवाधिदेव शंकर ने कहा—"यही हो" और वहां से चले गये। तब राम भी अनुचरों के साथ क्रमशः उस दिशा में गये, जहां से गौतमी का आविर्भाव हुआ था। पथ में जहां दयावश लक्ष्मण के हाथ से बाण गिर गया था, वह लक्ष्मणतीर्थ कहा गया। वहीं अनेक अखिल पापों का नाशक सीतातीर्थ भी है। जिन विष्णु के चरणस्पर्श के कारण गंगा त्रिभुवन पावनी है, उन विष्णुमय राम ने जहां स्नान किया था, वहां की विशेषता का वर्णन कैसे सम्भव है। रामतीर्थ जैसा कोई तीर्थ ही नहीं है॥२१२-२१७॥

॥त्रयोविंशत्यधिकशततम अध्याय समाप्त॥

❖❖❖

पूर्व भाग समाप्त

***